शिक्षण में मेरे प्रयोग

योगेन्द्र कुमार रावल

प्रकाशक
विकास प्रकाशन
4, चौधरी क्वार्टर्स, स्टेडियम रोड, बीकानेर-334001

समर्पण

माँ

स्व सुदर्शना देवी रावल प्रधानाचार्य (सेवाकाल 1928-1968)
भेरवरत्न मातृ हायर सैकेण्डरी स्कूल बीकानेर

को

शिक्षण मे मेरे प्रयोग

समर्पित

जिसके आँचल की साया में
माँ की ममता गुरु की गुरुता
मित्र की मित्रता और
शिक्षण की विरासती स्वधर्मिता का
सहज सुपात्र मैं रहा तथा
शिक्षण के प्रयोगों के तूफानी दौर में
अलगाव का कुपात्र भी मैं रहा
किन्तु फिर भी स्वर्गवास के पश्चात्
जिसके रहस्यमयी दृष्टान्तों द्वारा
पारलौकिक साया सहाय्य का
प्रिय पात्र भी मैं रहा।
उस माँ को
मेरे जैसा यायावर वृत्ति का पुत्र
इससे अधिक समर्पित कर भी क्या सकता था

अपनी बात

आज अपनी उम्र की 57वीं ढलान पर शिक्षण में मेरे प्रयोग लिखने से पहले अपनी बात लिखने के लिए कलम उठाई तो सहसा रूक गई। भावनाए उमड–घुमड कर अपना प्रवाह माँग रही हैं और उधर विवेकशील सकोच खुल कर अभिव्यक्त होने से रोक रहा है। तब क्या मानूँ कि भावना विवेकशून्य है ? नहीं ऐसा कहने को भी मन तैयार नहीं है। तब क्यों कलम उठ रही है और क्यों वापस रूक रही है– एक अजीबोगरीब मानसिकता की स्थिति में मुझे अपने जीवन का सारा अतीत कौंध रहा है। उम्र बीत गई। क्या पाया ? क्या खोया ? कितना लाभ रहा ? क्या हानि हुई ? सफल रहा या असफल ? भला इस पुस्तक लेखन से इन प्रश्नों का क्या सरोकार ? अन्तस् का एक कोना टीस रहा है कि बिल्कुल इन्हीं प्रश्नों का सीधा सम्बन्ध शिक्षण में मेरे प्रयोगों से है जिन्हें लिखने से पहले यह प्रश्न अपना उत्तर माँग रहे हैं। जिन बीबी–बच्चों रिश्तेदारों मित्र जनों सहकर्मियों के बीच उम्र भर जीया साँस ली सहयोग–असहयोग का लेन–देन किया जो सब इन प्रयोगों के पात्राग रहे हैं (जिनका मैं तहे दिल से आभारी हूँ) वे सब इन प्रयोगों को पढते ही इन्हीं प्रश्नों को दोहराएगे मेरा मूल्याकन करते आए हैं और फिर करेंगे और मैं हूँ कि जो न प्रयोग करते समय इन प्रश्नों का उत्तर दे सका न लिखते समय दे सकूँगा। अत इसी लज्जाभरी विवशता ने विवेकशील सकोच बनकर मेरी कलम को आज रोकने की कोशिश की है किन्तु दुनियाँ की नजरों में जो भावना मेरे लिए अन्धी विवेकशून्य रही वही मेरे क्रियाकलापों की मेरे प्रयोगों की प्रेरक–सचालक शक्ति (Motive force) और मार्गदर्शक तत्व (Guiding factor) रही जिस पर मेरा कोई वश नहीं था। उसी के वशीभूत होता हुआ सा प्रयोग करता गया जीवन गुजरता गया ढलान पर पहुँच गया प्रश्नों का घेरा आज भी घेरा ही बना रह गया।

ऐसी बात नहीं कि इन प्रश्नों ने मुझे बकारा और ललकारा नहीं तोड़ा और मरोडा नहीं रोका और टोका नहीं या फिर मार्ग में अवरोधक (Speed Breaker) लगाये नहीं–ऐसी बात नहीं है। इन प्रश्नों ने यह सब कुछ किया और यहाँ तक किया कि कई बार मुझे ऐसा लगा मानो 'मैं' जिन्दा ही नहीं हूँ, मर चुका किन्तु फिर एक बार के लिए मार्च 1993 में मेरी जिजीविषा ने स्पन्दन किया और नैतिक शिक्षा में सेवा के एक छोटे से प्रयोग ने यह एहसास कराया कि अभी तक जग नहीं चढा है। धार बाकी है। उसी धार पर चढा हुआ यह अपनी बात लिखने बैठ गया। वही छोटा सा प्रयोग इस पुस्तक का प्रथम अध्याय बन गर'।

शिक्षा का क्षेत्र एक विशाल विस्तृत क्षेत्र है। जीवन का कोई भी पक्ष इससे अछूता नहीं है। अत प्रयोगों की कोई सीमा रेखा नहीं। करने वाला चाहिये। मुझे ऐसा लग रहा है कि मेरी नीयत और नियति दोनों एकाकार हो गये। इसी कारण मेरी बाल्यावस्था से ही मुझे इस प्रकार के प्रयोगों मे रस आने लगा इतना रस कि उसकी तुलना में जमाने की भाषा–परिभाषा वाले कैरिअर के आयाम छूने के लिए प्रयास करने को न जी चाहा न समय लगाया। परिणाम स्वरूप अपने कैरियर के मार्ग न तो प्रशस्त कर सका न मजिल पा सका किन्तु हॉ शिक्षण के प्रयोगों की कुछ पगडंडियॉ जरूर बना सका और कहीं–कहीं पगडंडी भी नहीं बना सका तो मार्ग के पत्थर ही रग कर सेप कर रख दिये– इस आशा और विश्वास के साथ कि कभी न कभी किसी न किसी मेरी छुअन से छुए हुए छोने को मेरा स्पन्दन स्पंदित करेगा और हो सकता है कि वही स्पन्दन किसी मार्ग को प्रशस्त करता हुआ मजिल को रोशन कर देगा।

बीकानेर
दि 27 मई 1993

योगेन्द्र कुमार रावल

अनुक्रमणिका

Unit-I

नैतिक शिक्षण में मेरे प्रयोग

1 सेवा और चार दिन का मेवा

सन् 1993 की होली की छुट्टियो से कुछ पहले की बात है। एक दिन रात को डॉ पुरुषोत्तम दावडा मिलने आए। डॉ साहब होम्योपैथी के कुशल चिकित्सक हैं। बीकानेर में अपनी सेवा भावना और प्रत्यक्ष व्यावहारिक सेवा कार्यों के लिए सुपरिचित हैं। स्वामी शरणानन्द जी के अच्छे भक्त हैं। कहने लगे– 'रावल साहब' स्वामी शरणानन्द जी के वचनो और उपदेशो के आधार पर मैंने ये परचे छपवाए हैं। आप इन्हे अपने स्कूल के छात्रों में बँटवाइये और कुछ परचों को गत्तों पर चिपका कर कक्षाओ में टँगवाइये। अध्याप को मे भी बाँट दीजिये। इसमे सेवा के महत्त्व को बतलाया है। आप इसमे जरूर रुचि लेंगे इसी आशा से आपके पास लाया हूँ। डॉ साहब ने ढेर सारे परचे मेरे सामने रख दिये। मना करने का प्रश्न तो वैसे भी नहीं था और फिर डॉ साहब की बात को तो टालने का सवाल ही नहीं था। धर्म और अध्यात्म की इधर–उधर की कुछ गप्पें करके डॉ साहब तो चले गये। उनके जाने के बाद मैंने सेवा के बारे में छपे हुए उन बिन्दुओं को ध्यान से पढा और धर्म–सकट मे पड गया कि यदि स्कूल में इनका वितरण नहीं किया तो डॉ साहब को इसका सन्तोषजनक कारण क्या बताऊँगा ? बिना वितरण किये ही कह दूँ कि वितरण कर दिये तो ऐसा झूठ बोलना (दैनिक व्यवहार मे) मेरे स्वभाव में नहीं है। यदि ये परचे केवल कक्षा में टाँग दे और अध्यापको मे बाँट दें तो उससे डॉ साहब की आज्ञा व इच्छा का पालन तो हो जाएगा लेकिन छात्रो शिक्षकों पर इसका कोई उल्लेखनीय प्रभाव नहीं पडेगा। ये परचे रद्दी मे चले जाएगे। उस समय मुझे आन्तरिक पीडा होगी क्योंकि इस तरह की बौद्धिक दार्शनिक नैतिक उपदेश मूलक सामग्री एक शिक्षण सस्था में प्रभावशून्य उपेक्षित व उदासीन तरीके से अपमानित या अवमानित हो तो यह भी मुझे स्वीकार नहीं क्योंकि मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि ऐसी सामग्री का सदुपयोग मैं कितने बढिया तरीके से कर सकता हूँ। किन्तु यदि मैं उस सामग्री को अपने ढग से काम में लेता हूँ और सेवा का विषय बच्चों के बीच उठाता हूँ तो एक योजनाबद्ध तरीके से मेरे विशेष तौर–तरीके से मुझे गतिशीलता दिखानी होगी जिसमे शाला की रीति–नीति सचालक महोदय का रुख–रवैया अध्यापकों की रुचि परीक्षा के दिनों को ध्यान में रखते हुए अभिभावकों का दृष्टिकोण इत्यादि अनेक बातों की बाधाओं की सम्भवनाए मेरे सामने स्पष्ट दिखाई दे रही थीं। परन्तु यदि इसी मार्च महीने में इस पर कोई कदम नहीं उठाया

तो बाद में इसका इतना महत्व नहीं रहेगा और डॉ साहब सोचेगे कि मैंने इस काय मे रुचि नहीं ली। इन सब बातों के सकल्प–विकल्प तथा उधेडबुन में कुछ क्षण तक मैं खोया रहा और अन्त मे मैंने यह निश्चय कर ही लिया कि सेवा के टॉपिक पर मुझे एक प्रयोग कर ही लेना चाहिये। चूकि इस शाला की सचालक–रीति–नीति के अन्तर्गत स्काउट–गाइड या अन्य कोई ऐसी गतिविधि शाला में कभी नहीं रही अत छात्र–छात्राए सेवा के सामाजिक महत्व की भावना से अछूते हैं तथा स्कूली शिक्षा का सम्बन्ध सेवा से भी है इस एहसास से भी अछूते हैं। बोर्ड ऑफ सैकेण्डरी एजुकेशन तथा शिक्षा विभाग की SUPW की योजना द्वारा भी सेवा का भावनात्मक एहसास विद्यालयी स्तर पर इस विद्यालय में छात्रों को नहीं कराया गया है तो ऐसी हालत में मुझे यह अनुभव करना था कि सेवा की भावना की दिशा में छात्र–छात्रोंओं को कितनी सीमा तक भावनाशील बनाकर सक्रिय किया जा सकता है? सब कुछ सोच–विचार कर मैंने तय किया कि होली की छुटिटयो के बाद यह कदम उठाया जाय। अब प्रश्न खडा हुआ कि छात्रों के किस वर्ग मे यह योजना हाथ मे ली जावे ? बेहतर तो था सैकेण्डरी और हायर सैकेण्डरी का वर्ग। किन्तु बोर्ड की परीक्षाओ के कारण दसवीं और बारहवीं के छात्र–छात्राए तो अब मिल नहीं सकते थे। नवीं–ग्यारहवीं के कोर्स कुछ बाकी थे अत उन्हे छेड नहीं सकते थे। प्राइमरी के बच्चों के स्तर पर यह सामग्री जो डॉ साहब ने दी थी वह कुछ वजनदार पडती थी। अत अन्त म मैंने यही तय किया कि मिडिल विभाग की छठी–सातवीं–आठवीं कक्षाओं के आठ सैक्शनो के कुल 311 छात्र–छात्राओं म यह प्रयोग किया जावे।

होली की छुटिटयाँ समाप्त होते ही मैंने मिडिल विभाग की इन्चार्ज श्रीमती राजश्री को निम्नोक्त निर्देश दूरगामी प्रभावो को ध्यान मे रखते हुए दिये–

1 मिडिल प्राइमरी और इग्लिश मीडियम के सभी अध्यापको को व्यक्तिगत तौर पर एक–एक परचा सबको यह कह कर दिया जावे कि इस परचे मे जो सेवा के महत्व को बताने वाले बिन्दु हैं उनमें हर बिन्दु पर इस तरह से विचार करके रखे कि किसी भी अध्यापक को जब कहा जाय तो वह कक्षा मे या पूरी परेड में इन बिन्दुओं के आधार पर सेवा का महत्व समझा सकें।
2 इन्हीं तीनों विभागों के इनचार्ज अपने–अपने विभाग की हर कक्षा में मॉनीटरों के सहयोग से परचो को गत्तों पर चिपका कर दीवारो पर टँगवा दे।
3 बच्चों को कक्षाओ मे यह निर्देश दिया जावे कि इस परचे को सभी बच्चे रिसेस में या छुटटी के बाद पढे नोट करना चाहे वे नोट कर ले आपस में पढ कर सुनावें इसके अनुसार चार्ट के तौर पर अपने हाथ से चार्ट तैयार करें आपस में चर्चा करें अध्यापकों से भी कुछ जानना चाहे तो सामाजिक ज्ञान विषय के पीरियड मे चर्चा कर सकते हैं किन्तु इतनी तैयारी जरूर करें कि तीन–चार दिन बाद जब परेड में योगी जी सेवा के बारे में कुछ विशेष बताएगे और तुमसे कुछ पूछेगे तब तुम थोडा बहुत जवाब दे सको।
4 सैकेण्डरी–हायर सैकेण्डरी के इनचार्जों को ये परचे दे कर केवल इतना ही कहना कि इन्हें गत्तों पर चिपकवा कर कक्षाओं में लगा दीजिये। अन्य कोई

निर्देश नहीं देना है। (अनिर्दिष्ट आदेश की असफल प्रतिक्रिया का अनुभव मुझे देखना था)

मेरे निर्देशो के अनुसार चारों बाते पूरी करके राजश्री ने दूसरे दिन तक मुझे सूचित कर दिया। तीन चार दिन बाद मैंने अब केवल मिडिल सैक्शन को केन्द्र बना कर राजश्री से पूछा कि छात्रों और अध्यापकों में किस पर क्या प्रतिक्रिया हुई ? मुझे निम्नोक्त जानकारियाँ मिलीं –

1 छात्र–छात्राओं ने परचा पढा आपस में चर्चा भी की कुछ ने उसकी प्रतिलिपि उतार कर चार्ट की तरह अपने घर मे लगा दिया है।

2 अध्यापक स्वतन्त्र रूप से कक्षाओ में या परेड मे सेवा *Topic* पर कुछ भी बोल कर बतलाने मे असमर्थता बतला रहे हैं।

3 योगी जी क्या विशेष बात बताएगे इसकी उत्सुकता छात्रो और अध्यापकों को सभी को है। तीन–चार दिन बाद योगी जी परेड लेगे सबके प्रश्नों का जवाब भी देंगे–यह सूचना कक्षाओं में दे दी जावे–ऐसा निर्देश दे कर मैं फिर अपने काम में लग गया। इस तीन–चार दिन के अन्तराल मे मैंने स्वय भी थोडा सोच विचार कर एक रूप रेखा तैयार कर ली जिसमें मैंने यह तय किया कि डॉ साहब के परचे में से किस–किस बिन्दु पर मुझे कितनी विचार सामग्री किस–किस तथ्य–तर्क के साथ किस शैली–शब्दावली से पेश करनी है ? मेरे ऐसे मानस निर्माण (Mind Making) कार्यक्रमों का सारा आधार मेरी विशिष्ट शैली–शब्दावली पर ही निर्भर करता है। अत तर्क और शैली – शब्दावली के कुछ बिन्दु मैंने लिख कर रख लिये।

आखिर 19 मार्च को सयोग मिला। मिडिल सैक्शन के परेड स्थल पर छठी के तीन सैक्शन सातवीं के तीन सैक्शन और आठवीं के दो सैक्शन–कुल आठ सैक्शन के 311 छात्र–छात्राओं को सामूहिक रूप से मैंने सम्बोधित किया। अपनी बात शुरू करने से पहले मैंने यह निर्देश दिया कि सभी बच्चे अपनी–अपनी नैतिक शिक्षा की कॉपी में मेरी बताई गई बातो को घर जाते ही लिख लें। परेड मे इतने ध्यान से सुनें कि जब घर पर लिखने बैठें तो अधिक से अधिक मेरी बातें लिख सकें। जो बात मैं परेड में ही लिखाना उचित समझूँगा वह मैं वहीं लिखवा दूँगा। इसके बाद पहले ही दिन दि 19मार्च को मैंने निम्नोक्त तर्क पेश किये –

1 हाइड्रोजन और ऑक्सीजन दोनों बिल्कुल विपरीत गुण वाले तत्त्व हैं लेकिन फिर भी दोनों से मिल कर पानी का निर्माण होता है। उसी प्रकार अच्छाई और बुराई दोनों विपरीत तत्व हैं किन्तु दोनों से मिलकर मनुष्य के स्वभाव का निर्माण होता है। सर्वगुण सम्पन्न कोई नहीं होता।

2 सज्जन साधु और महापुरुष वे होते हैं जो अपनी बुराइयों को उभर कर ऊपर व्यवहार में नहीं आने देते और अच्छाइयों को अधिक से अधिक ऊपर सामने लाते हैं।

3 मथनी द्वारा मथने पर मक्खन ऊपर सामने उभर कर आता है छाछ नीचे रह जाती है उसी प्रकार सेवा की मथनी द्वारा मनुष्य की अच्छाइयाँ उभर कर सामने आती हैं बुराइयाँ नीचे दब जाती है। साधु, सज्जन और महापुरूषों के जीवन मे इसीलिये सेवा का गुण जरूर दिखाई देता है।

4 कलर बॉक्स व ज्योमेट्रीबॉक्स के उपकरणो की सहायता से चित्रो और नक्शों मे रग उभरता है। सेवा एक ऐसा उपकरण है जिससे मनुष्य के जीवन मे अच्छाइयो का रग और चित्र उभरता है।

दि 19 मार्च को ये तर्क मैंने जो यहाँ सक्षेप मे लिखे हैं उन्हे अपनी शैली शब्दावली से अच्छे विस्तार के साथ करीब एक घटे तक रोचक किन्तु गम्भीर और शालीन तरीके से पेश किये। यह बहुत ध्यान रखकर चलना पडता है कि तथ्यों और तर्कों मे सामञ्जस्य बना रहे विद्रूपता और अन्तर्विरोध (कन्ट्राडिक्शन) नजर नहीं आए वरना नई पीढी के गले बात नहीं उतरेगी। उदाहरण तथा उद्धरण पौराणिक आख्यानों में से कम से कम लिये जावें तथा रोजाना की जिन्दगी में से घर परिवार शाला समाज और दैनिक समाचार पत्रों में से उपयुक्त स्थान पर प्रयोग में लिया जावे तो अधिक प्रभावशाली होगा।

दि 20 मार्च को निम्नोक्त तर्क पेश किये गये –

1 जीव विज्ञान मे तथा आगे डॉक्टर बनाते समय मेढक और जीव–जन्तुओं की शारीरिक रचना छात्रो को समझाई जाती है क्योकि मनुष्य और पशु मे बायोलॉजिकल समानताए हैं। फिर मनुष्य और पशु मे अन्तर क्या हैं ?

2 अपनी प्रवृत्ति को मूल वृत्तियो को (अच्छाइयों–बुराइयो को) मनुष्य चाहे तो घटा सकता है बढा सकता है रोक सकता है दबा सकता है बुराइयो को अच्छाइयो मे बदल सकता है बशर्ते यदि वह चाहे तो ! किन्तु पशु या जानवरो मे 'चाहे तो का कोई महत्व नहीं है। उनकी मूल प्रवृत्ति वृत्ति (इन्सटिंक्ट) जैसी है वैसी ही उभरकर उसकी क्रिया–प्रतिक्रिया नजर आएगी।

3 मनुष्य की मूल वृत्तियाँ– बुराइयों की प्रवृतियाँ मनुष्य की रोजाना की जिन्दगी में उसके आचार–विचार–व्यवहार मे चाहे जब चलते फिरते उठते–बैठते घर मे परिवार में– स्कूल में दफ्तरों में उभर–उभर कर आती हैं परन्तु मनुष्य चाहे तो उसे उभरते ही रोक सकता है।

4 अब मनुष्य को ही यह तय करना है कि वह अपनी प्रवृत्तियो को लेकर जानवरपना दिखाए या आदमीपना निभाए। अपना अच्छा विकास करे या न करे यह मनुष्य के वश मे है उसके लिए वह स्वतत्र है। किसी के कहने से उपदेश देने से आर्डर करने से आदमीपना नहीं आता जानवरपना नहीं चला जाता जब तक कि आदमी अपने मन से नहीं चाहे !

दि 20 को जब छुट्टी के बाद दफ्तर मे हस्ताक्षर करने अध्यापक आए तब कुछ चर्चा व जानकारी के लिए मैंने उन्हें रोका और दो वार्ताओ की प्रतिक्रिया बच्चों पर किसी भी रूप मे महसूस हुई हो तो मैंने जानना चाहा। निम्नलिखित झलकियाँ और प्रतिक्रियाए तथा प्रभाव जानने व सुनने को मिले –

1 बच्चो ने करीब 15 15 20 20 पृष्ठ लिखे जिनमें मेरे तर्क व तथ्य तथा उदाहरण अधिक से अधिक ध्यान मे रखते हुए शब्दबद्ध किये। यद्यपि भाषा की अशुद्धियॉं अखर रही थीं किन्तु विचार सामग्री बच्चों ने अधिक से अधिक समेटने की कोशिश की थी–

यह सन्तोषजनक बात थी। कुछ छात्र–छात्राओं ने जिन्हें अपनी सामग्री पर आत्म–विश्वास था उन्होने सीधे मुझे ला कर दफ्तर मे दिखलाया और मेरे से प्रोत्साहन पा कर खुश हुए। अन्य बच्चों ने अपने–अपने कक्षाध्यापको–विषयाध्यापको को बतलाया। अध्यापकों ने मुझे रिपोर्ट दी कि छात्रों में इतना उत्साह था कि मेरे सम्बोधन के बाद जितना जल्दी वे लिख सकते थे लिख लेते जिससे कि घर जाते–जाते वे कहीं भूल न जावें। यहाँ यह ध्यान रखने की बात है कि इस प्रकार से गम्भीर विचार सामग्री केवल सुनकर फिर अपने आप लिखकर प्रस्तुत करने का इन बच्चों का पहला अवसर था।

2 अध्यापक श्री अमरूराम ने बताया कि कई छात्रों ने सेवा का चार्ट बना कर घरो मे लगाया है क्योकि कॉलोनी मे उन्होने स्वय कुछ बच्चों के घरो मे देखा जहाँ उनका आना–जाना है। कुछ बच्चो ने मूल परचा जो कक्षाओं मे टॉंगा गया था उसकी प्रतिलिपि कर–कर के घरों मे सबको पढ–पढ कर सुनाया। घरो मे सेवा के उन बिन्दुओ को ले कर चर्चा का विषय बन गया।

3 इनचार्ज राजश्री ने बताया कि आठवीं कक्षा के छात्रों ने अभी तक गम्भीरता से नहीं लिया क्योंकि एक–दो छात्र आपस में विनोदपूर्वक परेड में कही गई बात की मखौल उडा रहे थे।

जब मैंने उस मखौल का स्वरूप समझना चाहा तो राजश्री ने स्पष्ट किया कि परेड मे जो तर्क दिया गया था कि मनुष्य चाहे तो अपनी बुराइयो को रोक सकता है उसी चाहे तो की तर्ज पर वे छात्र आपस में हँस कर कह रहे थे कि यदि योगीजी चाहे तो जल्दी छुट्टी दे सकते हैं।

यह रिपोर्ट सुनते ही दफ्तर में मौजूद सभी अध्यापक हँस पडे। साधारण तौर पर ऐसी स्थिति मे छात्र को प्राय दण्ड दिया जाना ही उचित माना जाता है अथवा डॉटने–धमकाने का तो कदम अवश्य लिया जाता है। किन्तु मानस–निर्माण (Mind Making) प्रक्रिया के अन्तर्गत छात्रो की नकल निकालने की प्रवृत्ति मखौल उडाने की आदत इत्यादि के क्षणो मे अध्यापक को बहुत धैर्य विवेक और सहनशीलता से निर्णय लेना चाहिए। मजा तो तब है जब छात्र को पता भी न पडे कि हमने उसकी हरकत को भॉंप लिया है और कुछ ऐसा बौद्धिक उपाय या वातावरण बनाया जाय कि वह छात्र अपने आप अपनी दिशा बदल दे। यह काम आसान तो नहीं है किन्तु असम्भव भी नहीं है। मैंने इस क्षण में तुरन्त यह सोच लिया कि आगामी परेड में इसका बौद्धिक इलाज करना होगा। अत मैंने उसी समय कक्षाध्यापकों को यह निर्देश दिया कि वे रिसेस में प्रार्थना पूर्व छुटटी के बाद तथा किसी पाठ के पूर्ण हो जाने के बाद कक्षा मे बचे हुए समय

में छात्रों से सहज भाव से चर्चा करें और बच्चों की प्रतिक्रिया जानकर मुझे जानकारी देवे। अध्यापकगण इसके बाद चले गये। मैं अपनी विचार प्रक्रिया में तल्लीन हो गया।

दि 21 मार्च को रविवार का अवकाश था। दि 22 को परेड में मैंने निम्नलिखित बात बताई –

1 डॉक्टर और मास्टर का कार्यक्षेत्र बहुत कुछ एक जैसा है। बल्कि कइ दृष्टिकोणों से मास्टर का कार्य डॉक्टर से भी ज्यादा कठिन है।

इस तथ्य और तर्क को मैं बहुत ही बढिया तरीके से सटीक उदाहरण दे कर डॉक्टर–रोगी–दवाई–अस्पताल–इन्जेक्शन–सर्जरी इत्यादि शब्दों की तुलनात्मक व्याख्या शाला छात्र अध्यापक सजा या प्रयत्नों का प्रभाव इत्यादि शब्दों से स्पष्ट करता हुआ बच्चों के दिल–दिमाग पर ऐसी अमिट छाप डाल देता हूँ कि छात्रो की अनेक शकाओ तार्किक उलझनो तथा मानसिक उपेक्षाओं का समाधान अच्छी तरह हो जाता है। उन सारी व्याख्याओ का विवरण यहाँ दे कर कलेवर बढाना निरर्थक होगा अत मैं इतना ही कहूगा कि आज दि 22 मार्च को इस प्रयोग में यह डॉक्टर और मास्टर का तर्क अपनी महत्वपूर्ण भूमिका प्रमाणित कर गया।

2 डॉक्टर के पास तरह–तरह के कई श्रेणियों के बीमार आते हैं–स्वस्थ होने के लिए। शाला और अध्यापक के पास कई श्रेणियों के छात्र आते हैं– शिक्षित होने के लिए सस्कारित होने के लिये (अज्ञानता अस्वस्थता है जिसका दूर होना स्वस्थता है) डॉक्टर अपने बीमार की बीमारी की स्थिति आयु जीवनीशक्ति आदि को ध्यान मे रख कर 'डोज' और अवधि' तय करता है। जिस मरीज की जीवनी शक्ति प्रबल होती है उस पर डॉक्टर की दवा का असर बहुत जल्दी होता है। बहुतों का इलाज चलता ही रहता है। अभी हमारे इस सेवा' अभियान में कई बच्चों पर तुरन्त असर आया है कई बच्चे अभी तक ज्यादा खुराक माँग रहे हैं। अब आप लोग स्वय ही तय करे कि आपकी बीमारी किस तरह की है और किस श्रेणी के बीमार हैं। दवा कब तक चलानी होगी ? अध्यापक तो तय कर ही रहा है किन्तु आपकी जीवनी शक्ति–इच्छा शक्ति को भी तो काम करने दीजिये।

3 मनुष्य के जीवन में सुख और दु ख के उतार–चढाव आते ही रहते हैं। सुखी से सुखी धनी से धनी व्यक्ति के जीवन में भी दु ख किसी न किसी रूप मे मिलेगा। हर दु ख के क्षण मे मनुष्य को दूसरे मनुष्य की सेवा और उसके सहयोग की जरूरत पडती है। अत यदि हम अपने दु ख के क्षण मे किसी के सेवा–सहयोग की आशा करते हैं तो हमें भी दूसरों की सेवा के लिये तैयार रहना चाहिये।

4 सेवा करने और सीखने की कोई खास उम्र या कोई खास स्वरूप मात्र नहीं होता। सेवा शैशव काल से लेकर जीवन काल तक सम्भव हो सकती है क्योंकि सेवा का क्षेत्र और स्वरूप विशाल और विस्तृत होता है।

5 सेवा का क्षेत्र और स्वरूप का चयन अपने लिये करने से पहले अपनी आयु, अपनी शक्ति–क्षमता समय और परिस्थिति अपने घर–परिवार की सीमाओं आदि अनेक दृष्टिकोणों से विवेकपूर्वक विचार करके तय और निश्चय करके निर्णय लेना चाहिये।

सेवा के अनेक प्रकार

1 सबसे पहले अपने शरीर की सेवा
2 परिवार की सेवा
3 समाज की सेवा (मेला उत्सव तीज–त्यौहार संस्थाओं की सेवा आर्थिक सेवा)
4 देश की सेवा
5 मानव सेवा
6 भावना द्वारा सेवा इत्यादि।

दिनाक 22 मार्च का यह उद्बोधन महत्वपूर्ण था। मैं इसके प्रभाव और प्रतिक्रिया को जानने के लिये उत्सुक था। दैनिक जीवन के अनेक युक्ति सगत तर्क सगत उदाहरणो द्वारा अच्छी व्याख्या बन पडी थी।

दिनाक 20 के निर्देश के अनुसार आज परेड से पहले और परेड के बाद अध्यापको की व्यक्तिगत शिरकत द्वारा मिलने वाली जानकारियों पर मेरा आगामी निर्णय आधारित था। अत छुट्टी के बाद दि 22 को फिर 'दफ्तर मे दस्तखत करके घर जाने से पहले अध्यापको से मैंने जानकारियाँ ली –

1 अध्यापक अमरूरामजी और रामसिह जी ने बताया कि बच्चों मे परेड में दी गई विचार–सामग्री को लिखने की होड लगी हुई है। एक दूसरे की नकल करने या कराने को कोई तैयार नहीं हैं क्योंकि सब अपना–अपना प्रस्तुतीकरण दिखाना चाहते हैं।
2 राजश्री ने बताया कि पजाबगर परिवार की एक लडकी (अभी कक्षा 6 में) जिसकी 'इमेज' प्राइमरी कक्षाओ से ही III Class" रही है उसने इस दौर में खूब रुचि दिखलाई और काफी लिखा है जो टीचर्स की नजरों मे उभर कर आया है।
3 श्री भागीरथमल और कैलाश यादव ने बताया कि छात्रो और छात्राओं की कक्षाओ मे अनुशासन बनाये रखने मे आसानी महसूस हुई क्योकि पहले हमारे कहने पर कोई असर नहीं होता था अब छात्र अपनी हरकत को तुरन्त रोक लेता है।
4 श्री विजयसिह ने बताया कि छात्र प्रतीक्षा करते हैं कि देखें अब कौनसी नई बात परेड में सुनने को मिलेगी।
5 'चाहे तो और 'किस श्रेणी का मरीज है– ये मुहावरे परस्पर चर्चा में चल पडे है। रिसेस और खाली समय मे सेवा चर्चा का ही दौर चल पडा है। आठवीं के छात्र जो मखौल उडा रहे थे उनका आज लिखने का दौर देखने

को मिला। डॉक्टर और मरीज के उदाहरण का उन पर सही प्रभाव पडा है– यह सभी टीचर्स ने महसूस किया।

6 श्री रामसिह और अमरूराम ने घटना सुनाई कि सातवें पीरियड में गत 20 तारीख को आठवीं कक्षा का एक छात्र अपना कॉलर चौडा खोलकर छात्रों के बीच यो ही मजाक कर रहा था कि गुडे इस तरह कॉलर चौडा खोलकर रखते हैं। रामसिह जी ने उसे देख कर कहा कि ठहर जा मैं हैडसर से कहूँगा कि आप तो अच्छाई उभारने की कहते हैं ये बुराई उभारने की बात करता है। छात्र तुरन्त सकपका गया उसने अपनी हरकत को रोका और हैडसर को नहीं कहने की गुहार करने लगा। इस बात पर अमरूरामजी ने कहा कि क्या हो गया ? कह लेने दे हैडसर मारेंगे थोडे ही ! तब पास वाले अन्य छात्रों ने जवाब दिया कि मारते नहीं तो क्या हुआ इज्जत तो बिगडती है न ! दफ्तर मे पेश तो होना पडेगा !

इस प्रकार दि 22 को अध्यापको द्वारा मिलने वाली रिपोर्ट उत्साहवर्धक रही। परस्पर चर्चाओं के दौर में बच्चों ने अध्यापको को अपनी सेवा कार्यों की जानकारी भी दी जिसकी रिपोर्ट जब अध्यापक सुनाने लगे तब मैंने उन्हे उस समय अधिक विलम्ब हो जाने के कारण तथा ऐसे विवरण की लिखित रिपोर्ट रहनी चाहिये– ऐसा सोचकर यह निर्देश दिया कि सभी कक्षाध्यापक अपनी–अपनी कक्षा के छात्रों से चर्चा करके उल्लेखनीय झलकियाँ तथा जानकारियाँ लिख कर मुझे देंगे।

दि 23 मार्च को परेड में मैंने शाबाशी सामूहिक रूप से दी। बच्चों ने खूब तालियों की आवाज से अपनी खुशी का इजहार किया। बच्चों में जोश और उनकी आँखो में चमक इस कार्यक्रम के प्रति स्पष्ट नजर आई। इस परेड में मैंने एक प्रश्न सबको लिखाया जिसमें तथ्य थे जिनको मिलान करके उन्हें लिखने को कहा गया –

	बुराई रहित	अच्छाई सहित
1	क्रोध रहित	प्रेम सहित
2	लोभ रहित	क्षमा सहित
3	अहकार रहित	विश्वास सहयोग सहित
4	घृणा रहित	त्याग सहित
5	ईर्ष्या रहित	विनम्रता सहित
6	प्रतिशोध रहित	धैर्य साहस सहनशक्ति सहित
7	द्वेष रहित	सद्भावना और जिम्मेदारी की भावना सहित

यद्यपि यह कोई कठिन मिलान नहीं था किन्तु फिर भी कुछ छात्र–छात्राए इसे उपयुक्त मिलान नहीं कर सके किन्तु अधिकाश ने मिलान करके दुबारा लिखा –

1	क्रोध रहित	क्षमा सहित
2	लोभ रहित	त्याग सहित
3	अहकार रहित	विनम्रता सहित
4	घृणा रहित	प्रेम सहित
5	ईर्ष्या रहित	विश्वास सहयोग सहित

6. प्रतिशोध रहित — धैर्य साहस सहनशक्ति सहित
7. द्वेष रहित — सद्भावना और जिम्मेदारी की भावना सहित

अन्त मे बच्चो को यह प्रश्न दिया कि आप अपने लिये 'सेवा का चयन' कीजिये। इस प्रश्न का उत्तर दिया तो सभी ने किन्तु उसमें परिपक्वता की कमी थी जो स्वाभाविक थी साधारण तौर पर शरीर की सेवा परिवार की सेवा शाला की सेवा आदि चयन के तौर पर बच्चो ने लिखे।

मैंने दि 23 की परेड मे कुछ प्रश्नो के उत्तर तथा दैनिक जीवन के उदाहरण कुछ अधिक स्पष्ट किये। अब दि 29 सोमवार को अध्यापकों से कक्षावार लिखित रिपोर्ट देखने के बाद परेड ली जाएगी– ऐसा निर्देश देकर बच्चो को यह मौका दिया गया कि वे अपने सेवा कार्यों मे लगे और सही जानकारी लिखावें।

दि 29 को अध्यापको ने कक्षावार जो विस्तृत विवरण लिख कर मुझे दिया उसमें से कुछ बहुत ही उल्लेखनीय तथ्य और जानकारियाँ यहाँ उद्धृत कर रहा हूँ–

कक्षा VI A,B,C

मृदुलिका पहले घर पर कोई काम नहीं करती थी। अब घर के काम में सहयोग देती हूँ। पहले मम्मी का कहना टाल देती थी पर अब कहने के साथ काम करती हूँ। पडौस के घर में भी काम की सहायता कर देती हूँ। घरवालो को देखकर बहुत प्रसन्नता हुई।

ज्योति घर का सारा काम करने की कोशिश करने लगी हूँ। सब्जी भी बनानी सीखी। घरवालो को प्रसन्नता हुई कि काम सीखती है। चाचा का लडका घर खेलने आया। उसके लग गई। मम्मी घर पर नहीं थी। मैंने उसकी मरहम पटटी की।

मो इस्माइल मैंने अपने पडौसी की सेवा की। वह साइकिल से गिर गया था। मैंने उसे अस्पताल पहुँचाया तथा वापस घर लाया।

आनन्द मैंने मेरे छोटे भाई को मम्मी के खाना बनाने के समय रखना–खिलाना शुरू कर दिया। इससे मम्मी को मदद मिली। वे बहुत खुश हुईं।

सिकन्दर अली –अपनी पडौसी अन्टी की तबियत खराब होने के कारण खाना बनाने में उनकी मदद की। अपने छोटे भाई को गणित के पाँच सवाल रोजाना समझाने का नियम बना लिया है।

पूनम पहले घर पर मम्मी व बडी बहन का कहना नहीं मानती थी। हर बात पर जवाब देती थी। सब्जी लेने जाती तो बचे पैसों की टॉफी खा जाती थी। अपने भाई बहिनों के हिस्से की भी टॉफी खा जाती थी। मुझे ज्यादा डाँट पडती तो पापाजी को शिकायत कर देती थी। पापा मेरा पक्ष लेते थे। जब से हैडसर ने अच्छाई बुराई और सेवा की बाते बताई हैं तब से घर का काम बिना कहे करती हूँ। परिवार के सब लोगों का खयाल रखती हूँ। पहले घर पर डाँट पडती थी कि बडी बेकार लडकी है। अक्ल का तो नाम ही नहीं है परन्तु अब सब घर पर प्यार करते हैं। मम्मी ने पूछा कि आजकल बिना पूछे काम कैसे करने लग गई तो मैंने हैडसर की बातें बताईं। मम्मीजी ने कहा–

चलो अक्ल तो आ गई।

पहले मैं घर वालों के हिस्से की चाय पी जाती थी। कहती थी बिल्ली पी गई होगी। मेहमानों के लिये जो खाने पीने की चीजें आती थी वे चीजें मैं खा जाती थी। पूछने पर बहन का नाम लगा देती थी। पर अब ऐसे काम नहीं करती।

छोटी बहिन की मैडम बनकर रोज शाम को 6 बजे पढाती हूँ। उसे ABCD, पहाडे गिनती वर्णमाला सिखा दी।

रवीन्द्रभाटी अपने कपडे धोना जूतों पर पॉलिश करना आदि काम शुरू कर दिया है।

हेमन्त शर्मा चाचाजी के बच्चो को अपने साथ स्कूल लाना–लेजाना शुरू कर दिया हैजब कि इसी काम को नहीं करने के लिए मुझे घर मे रोज डॉट पडती थी।

सोहन सिह घर का काम करना मैं अपनी आदत के विपरीत समझता था। अब बाजार से सामान सब्जी वगैरह लाना शुरू कर दिया है। माता–पिता इस परिवर्तन से खुश हैं।

अकबर अली घर के कमरो को व्यवस्थित किया। किताबे सही ढग से रखीं। अपने छोटे भाई को शाला आने के लिये युनिफार्म व बूट आदि पहनाकर समय पर लाना शुरु कर दिया। पहले माता–पिता ने इस काम के लिये कई बार कहा पर मैं सुनी–अनसुनी कर देता था।

नीलोफर पहले घर का काम बिलकुल नहीं करती थी पर अब करती हूँ। अपने एक अकल की लड़की जो लाचार है उसे बोलना–लिखाना सिखाती हूँ। उसका एक हाथ व पैर खराब है।

पहले बहिनों को कहती थी कि तू मेरा काम नहीं करती तो मैं क्यों करूँ। पर अब कहने पर तुरन्त कर देती हूँ।

सगीता पहले मैं और मेरा छोटा भाई छोटी–छोटी बात पर झगडते रहते थे। आपस में जबान लडाते थे। अब ऐसा नहीं करते। शाम को मेरा भाई रोटी बेलता है मैं सेकती हूँ। मिलजुल कर काम करते हैं। पडौस की एक अटी है जिसकी आँखें कमजोर है। हम भाई –बहिन उसकी मदद करते हैं।

अजुमन पहले घर पर कपडे धोने को कहते तो मैं पापा को कहती थी–मुझे कपडे धोने नहीं आते तो पापा कहते कि बेटा मशीन लाएगे। एक दिन मम्मी ने कहा–कपडे धो ले तो मैंने कहा–ठहरो पापा मशीन लेने गये हैं। पर अब ऐसे जवाब नहीं देती। अपने कपड धोने लगी हूँ। छोटे भाई को स्कूल का काम कराती हूँ।

कक्षा VII A,B,C

सदीप जाटव हमें सेवा करने में आनन्द आ रहा है। हम कुछ पेड लगाना चाहते हैं जिससे पर्यावरण की दृष्टि से भी काम होगा और आने–जाने वालो को छाया भी मिलेगी। यदि हम पेड लगाये तो क्या विद्यालय की ओर से हमारी कुछ सहायता की जाएगी ?

मधु जयपाल मेरा भाई सेन्ट पीटर स्कूल में पढता है। जब मैं अपने भाई को

लेने गई तब वहाँ एक बच्चा रो रहा था क्योंकि उसकी मम्मी नहीं पहुँची थी। उसकी डायरी मे उसका पता देखा और उसके घर छोड़ा।

सातवीं कक्षा के लगभग सभी छात्र–छात्राओं ने अपने–अपने अध्यापकों को जो जानकारियाँ दी उनमें करीब–करीब यही जानने को मिला कि –

1 बच्चों ने घर पर उन कार्मों को करना शुरू कर दिया जिनके नहीं करने के कारण घर वाले प्राय कहा–सुनी करते रहते थे। उद्बोधन से बच्चों का ध्यान तुरन्त उन्हीं बातों पर गया जिनको वे जानबूझ कर ओझल कर रहे थे। घर के कार्मों में हाथ बटाना छोटे भाई बहिनों को सम्हालना साग–सब्जी बाजार से लाना पास–पडौसी का छोटा–मोटा काम कर देना इत्यादि।

2 एक तथ्य यह उभर कर आया अध्यापकों से प्रश्नोत्तर करने पर कि पहले यही सब काम जो बच्चे नहीं करते थे वे अब करने लगे तो यह प्रभावकारी परिवर्तन प्रत्यक्ष दिखाई दिया किन्तु एक अप्रत्यक्ष आन्तरिक परिवर्तन भी महसूस हुआ कि जो बच्चे यही सब काम मान्ो पहले करते भी रहे होंगे तो अब उन्हीं कार्मों को करने के साथ सेवा शब्द की चेतना भावना और सवेदना का सयोग उन्हें अनुभव होने लगा जिससे जीवन की एक सकारात्मक सन्तुष्टि का आन्तरिक आनन्द उन्हें महसूस होने लगा।

3 कुछ छात्रों ने गाय कुत्तों की सेवा के जिक्र भी किये। एक कुतिया और उसके दो बच्चे गन्दे नाले मे गिर गये। कुतिया तो निकल गई किन्तु बच्चे नहीं निकल पा रहे थे। मोहित शर्मा ने नाले मे घुस कर उनको निकाला। एक छात्र ने शरीर की सेवा का जिक्र करते हुए रिपोर्ट दी कि उसने अपने शरीर पर तेल मालिश शुरू कर दी।

इन सबसे अधिक रोचक परिवर्तन और भावनात्मक प्रभाव आठवीं कक्षा के छात्रों पर नजर आया। जहाँ प्रारम्भ मे आठवीं कक्षा के छात्रो ने जो उदासीनता दिखलाई थी उन्हीं छात्रो से जो रिपोर्ट मिली उसमे से विशेष उल्लेखनीय विवरण यहाँ प्रस्तुत है –

हरप्रीत सिह रूपाल पहले मुझे माता–पिता किसी भी काम के लिए कहते तो एक दो बार कहने पर तो मैं ध्यान ही नहीं देता था। काफी देर बाद करता भी था तो बिना इच्छा के करता था जिस पर मुझे डाँट डपट सुननी पडती थी। मगर अब एक बार कहते ही कर देता हूँ तथा कई काम समय पर अपने आप बिना कहे कर देता हूँ। मम्मी तब से बहुत खुश हुई है।

पहले मैं कॉमिक्स अधिक पढता था जिससे मेरा फिजूल खर्च भी होता था शक्ति क्षीण होती थी पढाई पर पूरा समय नहीं लगा पाता था। अब पैसो की बचत करता हूँ, पढाई करता हूँ जिससे मेरे परिवार के लोग प्रसन्न है। उनकी खुशी को देख कर मुझे भी खुशी होती है।

मोहम्मद रफीक छात्र ने बताया कि सेवा और नैतिक शिक्षा के इस कार्यक्रम से मुझे यह इच्छा जगी कि मुझे भी अपने मे कुछ परिवर्तन करना ही चाहिये। पहले मैं

किसी भी काम से जब बाजार जाता तो साइकिल में पक्चर या कोई न कोई टूट–फूट कर लाता जिसके खर्चे से माता–पिता परेशान होते और मुझे डॉट रोज खानी पडती थी। मेरे मे पान खाने की भी आदत पड चुकी थी जिसके लिए भी माता–पिता मुझे कई बार मना करते रहते थे। मैं चोरी–छुपे पान खा लिया करता था। किन्तु अब सारी स्थिति बदल चुकी है। अब बिना कहे होम वर्क कर लेता हूँ। बाजार का काम करते समय साइकिल सावधानी से चलाता हूँ। पान खाना बन्द कर दिया है। आशा करता हूँ कि ये कमियाँ वापस ग्रहण नहीं करूँगा।

विक्रम सिह चौहान अब मैंने पान–पराग खाना बन्द कर दिया है। घर वालों का कहना मानने लगा हूँ। पढाई में भी मन लगाता हूँ। मेरे में एक और कमी थी या मानो तो बहुत बड़ी गलती मैंने की थी। उसे बताने में असमर्थ हूँ पर मैंने उसे बिलकुल त्याग दिया है निश्चय कर लिया है कि उसे आगे नहीं दोहराऊँगा। अत मैं अपनी दो सबसे बडी कमियों को दूर करने में सफल हुआ हूँ। अब मैं अपने पडौसियों के भी छोटे–मोटे काम खुशी से कर देता हूँ जिससे सब खुश हैं।

इन छात्रों की रिपोर्ट के अलावा वीरेन्द्र सिह भाटी सुनील चौधरी देवेन्द्र कश्यप अजय जुनेजा जलज सिह इरफान आदि अनेक छात्रों ने अपने में परिवर्तन करने की रिपोर्ट लिखा कर कार्यक्रम के प्रति अपनी आस्था प्रकट की। इन अनेक छात्रों ने भी पान पान–पराग गुटखा कॉमिक्स गलत सगति आदि छोड कर घर के काम काज में रुचि फिजूल खर्च बन्द करके कुछ पैसा बचाने में रुचि छोटे भाई–बहिनो व पडौसियों को सम्हालने की रुचि बतलाई। राजेश नायक ने बताया कि मेरे घर वाले मेरी दादीजी से लडे हुए हैं नाराज हैं। वे मुझे वहाँ जाने से मना करते हैं लेकिन मैं दादाजी की सेवा करने लगा हूँ।

एक बात और जानने को मिली कि साधारणतीर पर जिन सयोगों को पहले छात्र ओझल (Ignore या Over look) कर जाते थे उसके बजाय अब ऐसे किसी सयोग को देखकर सेवा करने का अवसर आया हुआ मानकर वे उसे सेवा का आधार बनाते हैं। जैसे सुमति ने एक बकरी को कुत्तों के चगुल से छुडाया अनीष ने एक बूढी औरत जो बिजली का बिल भरवाने की लाइन में काफी देर से खडी थी उसका बिल भरवाया। मनोज ने एक बुढिया जिसका कोई नहीं है उसे अपने घर की बाडी में सब्जी दी। धर्मेन्द ने बताया कि मेरी मम्मी बीमार हैं वो व्रत नहीं रख सकती। मैंने पहले कभी व्रत नहीं रखा लेकिन अब उनके बदले मैं व्रत रखता हूँ।

इस प्रकार अध्यापकों द्वारा मिली इन जानकारियों के आधार पर मेरा उत्साह और आत्मविश्वास जनित प्रसनन्ता की सीमा नहीं रही। अब इन प्रत्यक्ष प्रामाणिक परिणामों के आधार पर मैंने अध्यापको से निम्नोक्त प्रश्न किये –

1 यदि इस प्रकार का प्रयोग छोटी कक्षाओं से लेकर बडी कक्षाओ तक पूरे विद्यालय के स्तर पर किया जाए तो कैसा रहे ?
2 यदि ऐसा प्रयोग एक सुनिश्चित योजनाबद्ध तरीके से पूरे सत्र तक कुछ नियमित स्वरूप बनाकर निरन्तरता के साथ किया जावे तो क्या परिणाम स्थायी मिलने की हम आशा कर सकते हैं ?

3 कक्षा तीसरी से ही साथ कई शालाओं में तो शिशु कक्षाओं से ही नैतिक शिक्षा के पाठ्यक्रम की सिरीज लागू की हुई है। उस सीरीज की पुस्तकों का पठन–पाठन प्रश्नोत्तर लेखन परीक्षा में भी उसका मूल्यांकन आदि कदम वर्षों से चल रहे हैं फिर भी क्या कारण है कि नैतिक शिक्षा के केवल चलते फिरते इस कार्यक्रम द्वारा ' सेवा और चार दिनों का मेवा ' हमारी उपलब्धि बन गया किन्तु वर्षों से पाठ्यक्रम के तौर पर पढ़ाने के बाद भी हमें उपलब्धि का कुछ क्यों नहीं मिल सका ?

4 भावनात्मक धार पर चढ़ाये बिना क्या ऐसी उपलब्धियाँ ली जा सकती हैं ?

5 भावनाओं को उभारने के लिए क्या मैंने किसी दण्ड भय या विशेष पुरस्कारों के प्रलोभन का सहारा लिया ?

6 क्या ऐसा परिवर्तन किसी धर्म ईश्वर खुदा या पाप-पुण्य पूर्वजन्म पुनर्जन्म राम रहीम-ईसा आदि नामों शब्दों अथवा किसी महापुरुष विशेष की छाप-मोहर लगाने के कारण मैं सम्भव कर सका ? क्या इन सबकी दुहाई दिये बिना यह असम्भव था ऐसा महसूस हुआ ?

7 यद्यपि रोजाना की जिन्दगी (घर परिवार मोहल्ला शाला आदि।) के आधार पर ही घटनाओं क्रिया कलापों या गतिविधियों के अनेक उदाहरण दे–दे कर मैंने अपने मूल तर्कों को स्पष्ट किया था किन्तु फिर भी गीता रामायण कुरान बाइबिल आदि ग्रन्थों की छाप–मोहर नहीं लगाने के कारण क्या भावनाओं के उभारने में कोई कमी महसूस हुई ? (उन उदाहरणों को मैंने यहाँ लिखा नहीं है)

8 क्या राजा शिवि श्रवण कुमार आदि की पौराणिक कथाओं को सुनाने में समय लगाया गया ?

मेरे इन सब प्रश्नों के उत्तर साफ और स्पष्ट थे। अध्यापक मेरे सकेत को बखूबी समझ रहे थे। लेबल मुक्त शिक्षा का भी यह एक प्रत्यक्ष प्रामाणिक प्रयोग था। मेरी पुस्तक 'शिक्षा स्वय एक मिशन' में लेबल मुक्ति तथा वैज्ञानिक शैली–शब्दावली का जो सकेत मैंने दिया है। उसका स्पष्ट प्रायोगिक स्वरूप इन चार दिनों में अच्छा देखने समझने को मिला। यह एक अनूठा प्रयोग था। ईश्वरवादी सनातनी अनीश्वरवादी जैनी पाप–पुण्य स्वर्ग–नरक वादी पौराणिक और विज्ञानवादी आधुनिक धर्म को अफीम मानने वाले साम्यवादी कुरान–बाइबिल सर्वोपरि मानने वाले मुस्लिम–ईसाई आदि कोई भी किसी भी मान्यता का अध्यापक व छात्र क्यों न हो किन्तु उस सब टकराव को बचाते हुए तथा नई पीढी के भी गले उतरे एसे उदाहरण देते हुए यदि अन्तिम परिणाम के रूप में छात्रों–छात्राओं का ऐसा व्यवहारगत परिवर्तन देखने को मिल सकता है तो हमारे लिए ऐसा प्रयोग एक अच्छा प्रयोग बन सकता है।

मेरा यह तात्पर्य नहीं कि छात्र को ईश्वर पाप पुण्य आदि शब्दों से वचित रखा जावे बल्कि नैतिक धार्मिक दार्शनिक आध्यात्मिक आदि कई शब्द हैं जिनका बोध भी वैज्ञानिक शैली शब्दावली द्वारा दिया जा सकता है जिसमें साम्प्रदायिक लेबल लगाने की

कहीं आवश्यकता नहीं होगी। हॉ इसके लिए अध्यापक की अपनी जीवन दृष्टि का निर्माण तो करना ही होगा।

मुझे स्वय को भी एक महत्वपूर्ण बिन्दु पर ध्यान केन्द्रित करने को मिला। मैंने यह महसूस किया कि साधारण तौर पर छात्र छात्राए अपनी कमियाँ गलतियाँ अथवा अवगुण छिपाना चाहते हैं दबाना या साफ इनकार कर देना चाहते हैं जबकि इस प्रयोग के दौरान बिना किसी भय प्रलोभन के हर छात्र छात्रा ने नि सकोच भाव से अपनी कमी को, अवगुण को स्वीकार किया। यह आत्म स्वीकृति इन बच्चों के आत्म निरीक्षण का स्पष्ट प्रमाण है और मनुष्य के जीवन में आत्म निरीक्षण और आत्म स्वीकृति का महत्व नैतिक सुधार के मार्ग में कितना अधिक है यह बताने की जरूरत नहीं है। आत्म स्वीकृति मनुष्य को आत्म प्रवचना से बचाती है और आत्म स्वीकृति के लिए आत्म निरीक्षण पहले जरूरी है। ये शब्द नैतिक विकास के प्रथम सोपान हैं। इस तराजू पर यह प्रयोग वजनदार प्रमाणित हुआ।

घर पर पडौस में साथियो में छोटे–बडे भाई–बहिनों मे जब इन बच्चो की यह सब गतिविधि चर्चा का विषय बनती है तो शाला की साख (गुडविल) पर भी अच्छा प्रभाव पडता हुआ महसूस होता है। ये सब ऐसी गतिविधियो से मिलने वाले आनुषगिक लाभ हैं।

इस प्रयोग में एक तत्व यह भी उभर कर आया कि अपनी कमियो–गलतियों के दूर होने पर माता–पिता और पडौसियों द्वारा प्रसन्नता व प्रशसा मिलने पर जो आन्तरिक सुख व आनन्द की अनुभूति छात्रों को हुई वह अनुभूति उनके नैतिक विकास का सकारात्मक सोपान प्रमाणित होगी।

दि 29 मार्च को अध्यापकों से रिपोर्ट लेने तथा उस पर चर्चा व विचार–विमर्श कर लेने के बाद मैंने परेड में सब बच्चो को फिर बुलाया। इस परेड मे छात्रों के प्रश्नों के समाधान किये गये। साधारण तौर पर बच्चे जब प्रश्न करते हैं तब हम लोग खीझ उठते हैं किन्तु इन्हीं क्षणों मे शिक्षक के धैर्य सूझबूझ और विवेक तथा त्वरित बुद्धि व निर्णय शक्ति की जरूरत पडती है। छात्रों मे सभी के दिमाग तर्क–वितर्क और प्रश्नो में नहीं उलझते किन्तु जिन कुछ बच्चो के दिमाग मे यह दुविधा शका उलझन आदि कुछ भी हो तो उसे अवश्य सुलझाने का मौका देना चाहिये। यदि समय मिले तो बच्चो को आपस में सवाल–जवाब करने का मौका दिया जावे तो अधिक अच्छा होगा बशर्ते उसे ठीक तरह से सयोजित किया जावे अन्यथा बच्चे विषयान्तर हो जाएगे। फिलहाल मैंने स्वय ही सबके प्रश्न सुने और अपनी शैली–शब्दावली में उनके उत्तर दिये। बच्चे सन्तुष्ट हुए। कुछ प्रश्नों के नमूने जरूर यहाँ उल्लेखनीय हैं–

1 मृदुलिका हमारे दो पडौसी हैं। दोनों ही निजी हैं। अगर दोनों के आवश्यक कार्य पड जावे तो पहले किसका कार्य करें ?

2 सुषमा अगर कोई छोटा बच्चा अपने घर का रास्ता नहीं जानता है और हम भी उसका घर नहीं जानते तो ऐसी स्थिति में क्या करेंगे ?

3 ज्योति मम्मी ने कहा है कि इतना काम करेगी तो पढाई भूल जाएगी। अब मम्मी को क्या जवाब दें ? एक प्रश्न और है कि हम ट्रेन में सफर कर रहे हैं। डिब्बे मे

एक बूढी औरत की तबीयत खराब हो जाती है और हमें अगले स्टेशन पर उतरना है तो हम क्या करेंगे ?

4 नीलोफर हमारा रिश्तेदार जो बाहर रहता है बहुत बीमार है। उधर हमारे पडौसी को भी हमारी सहायता की जरूरत है तो हमें क्या करना चाहिये ?

5 जलज सिंह सेवा के चयन से क्या अर्थ है ? मैं सेवा करूँ पर किसी को उसकी आवश्यकता ही नहीं हो तो क्या करूँ ? क्या एक से ज्यादा सेवा भी की जा सकती है ? किसी एक समय मे दो अलग–अलग प्रकार की सेवा पड़ जाय तो कैसे करें ?

6 एक छात्रा ने कहा कि घर में काम करती हूँ तब भी डाँट पडती है नहीं करती हूँ तब भी पडती है। अब क्या करूँ ?

7 दो छात्रो ने बताया कि उनके पिता ने बाहर सेवा करने का मना किया है क्योंकि उनके मोहल्ले में दो बच्चो को एक कार वाले उठा ले गये। अब यदि कोई सेवा का सयोग मार्ग मे आवे तो क्या करें ?

8 मिडिल की इनचार्ज राजश्री हायर सैकेण्ड्री की इनचार्ज मीनाक्षी तथा इंग्लिश मीडियम विभाग के अध्यापक राम किशन – इन तीनों का मिलाजुला प्रश्न था कि समाज में सत्य इस सीमा तक दबा दिया गया है तथा अनैतिकता इतनी हावी हो चुकी है कि जीवन में सत्य सेवा सवेदना आदि की चर्चा भी निरर्थक और हास्यास्पद लगती है। जब समाज–परिवार में हमसे तो कोई भी दूसरा व्यक्ति या रिश्तेदार भी वापस सत्य और सेवा का व्यवहार नहीं करता तब हम अकेले क्या करें ?

प्रश्नोत्तर की परेड में छात्रों के प्रश्नों का उत्तर–समाधान सन्तोष जनक कर दिया गया किन्तु समय के अभाव में अध्यापको के प्रश्न का उत्तर रह गया। (यद्यपि मेरा एक लेख मैंने इस सबध मे उन्हें पढने को दिया)। एक प्रश्न बडा ही रोचक तथा व्यावहारिक था। प्रश्न था कि हम परीक्षा देने जा रहे हैं। मार्ग में सेवा का ऐसा कोई सयोग (जो वास्तव मे सही और आवश्यक है) हमें मिले तो क्या परीक्षा के हॉल में देरी से जाने पर हमें बैठा लेंगे और बाद में अधिक समय देंगे ?

इस प्रकार इन प्रश्नों के तौर–तरीकों से अनुमान लगाया जा सकता है कि छात्रों और अध्यापको का चिन्तन प्रवाह इस दिशा मे चला है। चिन्तन की प्रक्रिया का विकास इस तरह के कार्यक्रमों की एक अच्छी उपलब्धि मानी जानी चाहिये।

अब इस प्रयोग का अन्तिम प्रसग प्रस्तुत कर रहा हूँ। सयोग ही कहूँगा कि ऐसा प्रसग इसी दौर में आया जो एक प्रकार से इस 'पाठ का मूल्याकन प्रश्न बन गया।

मैं 'सेवा और चार दिन का मेवा' प्रयोग के प्रश्नोत्तर का दौर समेट कर एक आन्तरिक पूर्णता व सन्तोष की अनुभूति करता हुआ अपने दफ्तर में वार्षिक परीक्षा सबधी कार्यों में व्यस्त हो गया। इतने में कुछ अभिभावक बस व्यवस्था की शिकायत ले कर आये। शिकायत कुछ पेचीदा थी अत एकाग्रता से मुझे सारा काम छोड कर उन्हें प्राथमिकता देनी पडी। मैं बहुत सचेत हो कर अभिभावकों की बात सुन रहा था कि अचानक आवाज आई– 'मे आइ कम इन सर' ? मैंने अभिभावकों की बात को बीच में नहीं रोकते हुए आँख और गरदन के सकेत से मॉनीटर छात्र को अन्दर आने की आज्ञा दे दी और बस की शिकायत उसी ध्यान से सुनता रहा। लेकिन मॉनीटर के साथ तीसरा छात्र जो बडी जोर

की सुबकियाँ भर रहा था तो मुझे बीच मे ही पूछना पड गया कि क्या बात हो गई ? मॉनीटर बोला कि गुरुप्रीतसिह का टिफिन राजेश गुप्त ने और आनन्द शर्मा ने खा लिया।

आनन्द शर्मा रो रहा है कह रहा है मैंने बिलकुल नहीं खाया। सबसे पहले रोते हुए छात्र को मैंने कहा कि अच्छा जाओ पहले मुँह धो कर पानी पी कर आ जाओ फिर फैसला करेंगे। मॉनीटर को कक्षा मे भेज दिया और शेष तीनों छात्रों को वहीं बैठा लिया। अभिभावकों से वापस बात करने लगा। उनकी सारी बात समझ कर उनकी शिकायत के तथ्य जो नोट करने लायक थे वे नोट करके उन्हे दूसरे दिन का समय दे कर बिदा किया। फिलहाल मेरे लिए सातवीं कक्षा के इन तीन छात्रों की शिकायत मेरी ताजा–तुरन्त मानसिक तृप्ति को कुछ चोट पहुँचा रही थी।

मैंने तीनों छात्रों के हाव–भाव देखे। वास्तव में शिक्षा क्षेत्र मे छात्रों की दुनियॉ में उनके चेहरों को पढना किसी गहन ग्रन्थ के अध्ययन से कम नहीं होता। जो छात्र भूखा *रह गया जिसका टिफिन खा लिया गया था वह बिलकुल शान्त खडा था। उसकी ऑखों* में कोई क्रोध या क्षोम नजर नहीं आया। उसके चेहरे पर उसकी सहज मुस्कुराहट दिखाई दे रही थी। दूसरा छात्र जिसने टिफिन खाया था उसने खाने से इनकार तो नहीं किया किन्तु अब परिणाम की प्रतीक्षा में सहमा हुआ तनिक शर्मिन्दा सा चुपचाप खडा था। तीसरा उद्विग्न अधिक था। परिणाम से भयभीत था। रो भी रहा था। साथ में खाने से इनकार भी कर रहा था। मैंने थोडा हेरफेर कर प्रश्न किया उस तीसरे से कि ठीक है तुमने खाया नहीं लेकिन जब यह दूसरा लडका खा रहा था तब तुमने टिफिन निकालने में और खाना शुरु करने मे थोडा साथ तो दिया ही था न ? बच्चा एकदम चुप था। मैंने फिर उसे मौका देते हुए कहा कि अच्छा यह बताओ जिसके टिफिन की यह शिकायत आई है यह लडका तुम्हारा दोस्त है या इससे तुम्हारा कुट्टा है ? बच्चा बोला – 'कुट्टा तो नहीं है। तब यदि इसका टिफिन खा भी लिया तो क्या हो गया ? तुम साफ–साफ कह दो कि खाया है। बच्चा फिर चुप ! मैंने थोडा दृढता से पूछा–तो तुमने भी टिफिन खाया तो है न ! इस बार छात्र ने गरदन के सकेत से स्वीकार कर लिया। तब मैंने दूसरे छात्र से पश्न किया कि तुमने इसका टिफिन क्यो खाया ? इस टिफिन खाने वाले मूल व मुख्य छात्र ने बहुत ही सहज भाव से जवाब दिया– 'मुझे इसका अचार अच्छा लगता है। पहले छात्र टिफिन वाले ने कहा कि यह पहले भी दो बार मेरा टिफिन खा चुका है। तब मुझे यह एहसास हुआ कि इस छात्र को अचार की सुगन्ध और अचार के स्वाद ने उसे मजबूर कर दिया। मैंने मालूम किया कि *यह आम का अचार था। अब बाजी मेरे पाले मे थी कि* दोनों टिफिन खाने वाले छात्रो को किस दण्ड से कितना दण्डित किया जाए ? मेरा दफ्तर भी बडा विचित्र है। एक लाजवाब कोर्ट है। बिना धारा का कोर्ट ! धारा एक भी लागू नहीं कर सकता किन्तु फैसला दिये बिना भी चल नहीं सकता। फैसला तो देना ही होगा। मैंने तीनों छात्रों से पूछा कि वे अपने–अपने टिफिन मे क्या–क्या लाते हैं ?

एक बोला– परावठा और आम का अचार
दूसरा बोला– रोटी और नीबू का अचार
तीसरा बोला– नमक–मिर्च का परावठा

मैने तुरन्त कहा कि कल तुम तीनो ही अपने–अपने टिफिन मे दो–दो पीस ज्यादा लाओगे और अपनी मम्मी जी से कहना कि कल हमारे दो मेहमान साथी भी हमारे साथ मे टिफिन करेंगे। कल रिसेस मे तुम तीनो पास मे एक ही जगह बैठ कर टिफिन कराँगे। बोलो मजूर है ? एक क्षण भर के लिए तीनो बच्चा की आखो की रौनक बदल गई। उन्हें इस फैसले की कल्पना नहीं थी। किन्तु दूसरे ही क्षण सध कर मुस्कुराकर तीनों बोले–यस सर ! मैं भी मुस्कुराता हुआ बोला ठीक है अभी तुम तीनो जाओ कल का टिफिन करो उसके बाद तुम्हारा फैसला फाइनल सोचेगे।

दूसरे दिन एक बार तो मेरे मन मे आया कि पहले उन तीनो को बुलाकर पूछूँ कि टिफिन मेरे कहे अनुसार लाये या नहीं ? किन्तु फिर यह सोचा कि रिसेस निकल जाने दी जावे उसके बाद ही बात की जावे। रिसेस समाप्त होने के बाद मैंने तीनों को बुलाया। छात्रों की चेहरे की रौनक देखने लायक थी। मैंने पूछा–आज तीनो ने टिफिन एक साथ किया ? 'यस सर'– तीनो का जवाब दृढता के स्वर के साथ घुले मिले आनन्द का स्वर था। 'टिफिन में आज कैसा स्वाद आया ? उत्तर मिला– 'बहुत अच्छा लगा। ।

अब मैंने उस दूसरे छात्र से एक प्रश्न किया।

'देखो बेटे हमारे प्रश्न को ध्यान से सुन कर हमे सही जवाब देना। हम यह नहीं पूछ रहे हैं कि इस शिकायत मे गलती क्या थी ? बल्कि हम पूछ रहे हैं कि इसमे गलती कहाँ थी ? मैंने तो सोचा कि जवाब मिलेगा कि 'सर मुझे इससे पूछ कर आज्ञा लेकर टिफिन करना चाहिये था अत बिना आज्ञा के टिफिन कर लेने मे मेरी गलती थी। लेकिन मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा जब ऐसा कोई जवाब मुझे नहीं मिला और उस छात्र ने बिन कुछ अटके तपाक से जवाब दिया– 'सर मैं अपने–आपको रोक नहीं सका।" छात्र का यह जवाब देना था कि मैं अपनी कुर्सी पर उछल पडा। मेरा फैसला निकल पडा 'शाबाश ! तुम्हारा फैसला तुम्हीं ने दे दिया। जाओ बेटा आगे से अपने–आपको रोकने में सफल होने की कोशिश करना।

बच्चे गुदगुदाते हृदय से चल दिये। मैं खोया–खोया सा इस अप्रत्याशित उत्तर पर सोचता का सोचता रह गया। मुझे दि 20 मार्च की परेड में मेरी ही शब्दावली इन क्षणों में वापस कौंध गई। मैंने ही कहा था– अपनी वृत्तियों को पशु चाहे तो भी रोक नहीं सकता किन्तु मनुष्य चाहे तो रोक सकता है। मनुष्य और पशु में अपनी वृतियाँ रोक सकने का ही बुनियादी अन्तर है। मैं अपने दफ्तर में अपनी ही प्रयोगों की दुनियाँ में खोया–खोया कुछ क्षण शून्य की ओर निहारता रहा फिर यही सोचता हुआ अपने अगले काम में लग गया कि यदि छात्र को बुनियादी अवधारणा के रूप में यह एहसास हो जाए कि मनुष्य बने रहने के लिए अपनी वृत्ति पर रोक लगाना एक विचारणीय बात है तो क्या नैतिक शिक्षण की दिशा में यह एक सन्तोषजनक उपलब्धि नहीं कहलायेगी ? लेबलमुक्त नैतिक शिक्षा का मार्ग प्रशस्त है।

(नोट – इस घटना को 'टिफिन की चोरी' शीर्षक से पात्रों के नाम बदलकर मैंने प्रकाशित–प्रसारित भी किया।)

□□

2 खूब लगर छका

सन् 1966 की बात है। मैं कुछ विशेष आर्थिक सकट मे था अत भैरवरत्न पाठशाला में सबेरे की शिफ्ट में पार्ट–टाइम अध्यापन भी करने लगा। इस शाला में शहर के अन्दरूनी हिस्से के ओसवाल और माहेश्वरी परिवारों की लडकियाँ अधिक सख्या मे होती हैं जिनमें पारम्परिक प्रतिबद्धता बहुत मजबूत होती है। इनके अध्यापन में नवाचार का प्रयोग करना आसान नहीं होता और फिर साठ के दशक में तो नवाचार मेरे सामने इस शाला के वातावरण में कठिन काम था। यदि प्रयोग में कहीं ऐसी–वैसी कोई भूल रह जाती और अभिभावकों की शिकायतें आ जाती तो माँ (प्रिंसिपल) के नाराज होने का भी डर था क्योंकि माँ का प्रशासन अपने समय का बीकानेर का माना हुआ 'गगाशाही प्रशासन' था।

खैर मुझे सैकेण्डरी व हायर सैकण्डरी की अनिवार्य तथा ऐच्छिक हिन्दी के विषय पढाने को मिले। उन दिनों बोर्ड के पाठक्रम में नवीं–दसवीं मे पथ प्रणेता नाम की पुस्तक में महापुरुषों की जीवनियाँ पढाई जाती थीं। इन जीवनियो को मैं अपनी शैली शब्दावली से व्याख्या कर–कर के जब कक्षा में पढाता था तब कक्षा की तन्मयता भाव विभोर मानसिकता देखने लायक होती थी। आस्थाओं और विश्वासो को झकझोर देने के लिए इन जीवनियों का अध्यापन एक बढिया माध्यम मेरे लिये बन गया। पर मुझे चैन कहाँ? मैं तो किसी प्रत्यक्ष परिवर्तन की बाट जोह रहा था– एक ऐसा परिवर्तन जो इन रूढिबद्ध परिवारों की बेटियों के दिल–दिमाग से एक सहज झरने के स्रोत की तरह फूट पडे और उस प्रवाह की स्वाभाविकता को देख कर मैं अपनी आन्तरिक खुशी प्राप्त कर सकूँ।

राम महावीर ईसा आदि जीवन चरित्र मैं पढा गया। छात्राए भावाभिभूत हो रही हैं– ऐसा महसूस तो मुझे हुआ (अध्यापक को अपना 'ऑबजर्वेशन' बहुत सजग रखना पडता है।) किन्तु सहज सक्रिय स्पन्दन नजर नहीं आया। मैं अपना कोर्स पूरा कराता जा रहा था। अब गुरुनानक की जीवनी का अन्तिम पृष्ठ चल रहा था। अचानक बीच में ही एक छात्रा का हाथ उठा। मैंने पूछा–बोलो कहाँ समझ मे नहीं आया ? छात्रा बोली– 'नहीं सर समझ में तो आ रहा है मै तो यह पूछना चाहती हूँ कि कल गुरुनानक जयन्ती का अवकाश का ऑर्डर आया है तो इस जयन्ती पर कोई कार्यक्रम शाला में क्यों नहीं होता जैसे गाँधी जयन्ती को होता है ? सभी छात्राओं का ध्यान अब पुस्तक से हट

कर छात्रा की तरफ मेरी तरफ आपस में एक–दूसरे की तरफ बँट गया। सारी कक्षा की आँखें मानो मेरे से सन्तोषजनक जवाब चाहती थी। मैं एक बार के लिये तो दुविधा में पड गया कि शाला मे नानक जयन्ती नहीं मनाने के कारणों को ले कर शिक्षा प्रणाली सामाजिक प्रतिवद्धताए शालाओं की रीति–नीति जयन्ती आदि के नाम से मिलने वाले अवकाशो द्वारा छुट्टी मनाने की मानसिकता इत्यादि अनेक दृष्टिकोणो से आलोचना–प्रत्यालोचना का वातावरण बन सकता था किन्तु सक्षेप में सकारात्मक उत्तर मात्र दे कर मैं आगे पाठ पढाने में लगना चाहता था। अत मैंने कहा कि केवल यही शाला नहीं बल्कि अन्य अनेक शालाओं में जयन्तियाँ प्राय छुट्टी की सूचक बन गई हैं।

शाला मे आयोजन हो या न हो किन्तु कल गुरुद्वारों में नानक जयन्ती का *कार्यक्रम सिक्ख लोग बडे जोशोखरोश के साथ मनाते हैं। अचानक दो–तीन छात्राओं के* प्रश्न उठ खडे हुए –

'गुरूद्वारे कैसे होते हैं ?

'क्या सिक्खो के अलावा दूसरा भी वहाँ जा सकता है ?

'क्या हमे ले जा कर आप गुरूद्वारा दिखा सकते हैं ?

कक्षा को शान्त करते हुए मैं बोला कि आपकी सब जिज्ञासाए प्रत्यक्ष गुरूद्वारा देखने पर शान्त हो सकती है। गुरूद्वारा सबके लिए खुला है। जो छात्राए जाना चाहती हैं जिनके माता–पिता कोई आपत्ति नहीं उठावें वे चलें तो मैं व्यवस्था कर दूँगा। मैं स्वय वहाँ मौजूद रहूँगा। मेरा इतना कहना था कि 'हम चलेंगे हम भी चलेंगे' का शोर कक्षा में गूँज उठा। ऐसे क्षणो मे छात्र–छात्राओ का स्वाभाविक उत्साह (अनुशासन और सयम आदि की वर्जनाए तोड कर) शोर के रूप में निकल पडता है। इन्हीं क्षणो में शालीनता के साथ कक्षा को शान्त करना अध्यापक की कुशलता का द्योतक होता है। कक्षा शान्त करके दूसरे दिन गुरूनानक जयन्ती क अवसर पर दसवीं कक्षा की सब छानाए तथा उनसे आकर्षित होकर कुछ नवीं–ग्यारहवीं की छात्राए भी शामिल हुईं। उनकी सारी व्यवस्थाए करके मैं निश्चिन्त भी हुआ और इस सक्रिय सहज प्रभाव को प्रस्फुटित होता हुआ देखकर *मन ही मन प्रसन्न भी हुआ।*

शरत् पूर्णिमा–नानक जयन्ती के दिन बीकानेर के रानी बाजार गुरूद्वारे में सबेरे नौ बजे से मैं अपने सिक्ख मित्रो से गप्पे करता हुआ बाहरी द्वार की तरफ प्रतीक्षा पूर्ण नजरो से देखता हुआ खडा था। इतने में ही मेरी छात्राओ की टोली चपरासिन और इनचार्ज अध्यापिका के साथ गुरूद्वारे मे पहुँची। एक बार के लिए गुरूद्वारे के वातावरण में भी कुछ जिज्ञासा भरी हलचल मची। सब की नजरें छात्राओं की टोली पर थी। आश्चर्य का विषय था सब के लिए क्योंकि प्राय इस तरह की टोली कभी बीकानेर गुरुद्वारे में किसी ने देखी नहीं थी। नवाचार कुछ नवीन परिस्थितियाँ तो उत्पन्न कर ही देता है। थोड़ी ही देर में सब सामान्य हो गये। गुरूद्वारे की परम्परा को देख समझ कर छात्राए भी अपनी चुन्नियाँ अपने सिर पर से ओढती हुईं बडे हॉल मे गईं क्योंकि नगे सिर वहाँ नहीं जाया जाता। मत्था टेकना शब्द पाठ का तौर–तरीका गुरुवाणी का श्रवण आदि सब गतिविधियों में सभी छात्राए रूचिपूर्वक सलग्न थीं। मैं सब कुछ सजगता से ऑबजर्व

कर रहा था। थोड़ी देर बाद मैंने देखा कि सब सिक्ख महिलाओं के साथ छात्राए लगर में बैठीं। लगर में भोजन करना इन ओसवाल–माहेश्वरी कन्याओं के लिए एक नवीन जिज्ञासाभरा आनन्ददायक अनुभव था। जब लगर से वापस सब छात्राए एक जगह इकट्ठी हो गईं तब मैंने उनके प्रफुल्लित हाव–भाव देख कर एक प्रश्न पूछा– क्या तुमने गुरूद्वारे के लगर की तन्दूरी रोटियाँ चखीं ?

"चखी नहीं खाईं पेट भर के खाईं जवाब समवेत स्वर मे मिला। इतने में ——'सर ! इन तीनों ने अपना व्रत तोड दिया। बहुत हास्यपूर्ण उलाहना के स्वर मे एक छात्रा बोली। मेरे मुँह से केवल इतना ही निकला– अरे ऽ ऽ ऽ । नानक जयन्ती पर गुरूद्वारे के उस वातावरण में व्रत तोड कर भी लगर छकने वाली तीन छात्राओ में से एक छात्रा का जवाब था– 'तो क्या हो गया ? जीवन को सहज रूप से जीने में भी तो कोई आनन्द मिलता है। मेरे मुँह से बरबस निकल पडा– 'शाबाश ! और उधर दो–तीन छात्राओं के हाथ इस छात्रा की पीठ थपथपाने लगे। अन्य छात्राए आनन्द बोध से मुस्कुरा रही थीं। कुछ का ध्यान छोटे–छोटे जूडे बाँधे हुए सिक्ख शिशुओं की तरफ केन्द्रित हो चुका था जो गबदू–गबदू गोरे–गोरे प्यारे–प्यारे लग रहे थे। अपनी छोटी–छोटी अगुलियों से अपने–अपने मम्मी–पापा के हाथ पकडे–पकडे चले आ रहे थे। मम्मी के साथ मत्था टेकना सीख रहे थे। मेरा दोस्त सरदार मोहकम सिह गुरूद्वारे में मेरी खुली कक्षा को देख कर गद्‌गद् हो रहा था। आज भी नब्बे के दशक मे तीस साल बाद भी एक दिन उसके साथ गप्पें करते–करते चर्चा चल पडी तो उस नानक जयन्ती की याद ने हमे भाव विभोर कर दिया।

लगर के बाद दो सिक्ख विद्वानों द्वारा छात्राओं को गुरूनानक के जीवन और दर्शन पर व्याख्यान दिलवाया। शाम को चार बजे तक सभी छात्राए निश्चिन्त व निस्सकोच भाव से नानक जयन्ती को सही अर्थों में मना रही थीं और नानक का पाठ सही अर्थों में पढ रही थीं। उसके बाद सब को व्यवस्था के साथ घरों पर भेजा।

मैं शाम को घर लौटा किन्तु खोया–खोया सा ! पत्नी ने विनोद किया– 'कहाँ हो ? घर में या गुरूद्वारे मे ? मैं हसा किन्तु दिमाग मे वह जवाब घूम रहा था – 'जीवन को सहज रूप से जीने में भी तो कोई आनन्द मिलता है। मैं सोच रहा था कि ऐसे सटीक उत्तर की मुझे कल्पना थी क्या ? नानक का पाठ पढाते समय नानक के सहज जीवन दर्शन की जो व्याख्या छात्राओं ने 'पकड ली' उसी का तो यह सहज निचोड था। मैं तुरन्त सामान्य हो कर पत्नी के साथ सहज घरेलू बात बातचीत मे लग गया।

□□

3 मसजिद मे घण्टी क्यो नहीं है ?

प्राय ऐसा देखने को मिलता है कि जिस विद्यालय के आसपास के मोहल्लों या इलाकों मे जिस धर्म–सम्प्रदाय के समुदाय के लोग अधिक रहते हैं उन्हीं के घरों के बच्चों की सख्या उस विद्यालय मे अधिक होती हैं। चूकि भैरवरत्न विद्यालय के आसपास के मोहल्लो मे से अधिकतर माहेश्वरी समुदाय के घरों की लडकियाँ पढने आती रही हैं और फिर ज्यादातर तेरापथी–बाईसपथी जैन परिवारों की लडकियाँ आती रही हैं जिनके साधु–साध्वी मुँह पर पटटी बाँध कर रखते हैं। इन सब परिवारों में किसी अन्य समुदाय के लोगो की परम्पराओं को देखने–समझने का अवसर माता–पिता अपने बच्चों को देते ही नहीं। वे शिक्षा की दृष्टि से इसकी बौद्धिक आवश्यकता महसूस करने को तैयार नहीं हैं। यदि आवश्यकता महसूस करने को तैयार नहीं है यदि शाला और शिक्षक अपनी भूमिका अदा करें तो इस दिशा में कुछ पहल और परिवर्तन की आशा की जा सकती है। मैं इस तरह की पहल करने मे एक आन्तरिक आनन्द महसूस करता हूँ।

इसी भैरवरत्न विद्यालय मे गुरूनानक की जीवनी का अध्यापन कराते समय गुरूद्वारे की सिक्ख समुदाय की परम्पराओं का ज्ञा प्राप्त करने का अच्छा सयोग छात्राओं को जब मिला तो इस दिशा में कुछ और आगे सोचने और बढने की सम्भावनाओं का विकास छात्राओं मे देखने को मिला। उन्हीं जीवनियों के अध्यापन के दौर में जब महर्षि दयानन्द की जीवनी को मैं पढा रहा था तब छात्राओ ने आर्य समाज के बारे मे अपनी जिज्ञासाए कक्षा मे पेश कीं। कक्षा दसवीं की छात्राए इतनी अनजान कि वे आर्य समाज और आर्य समाजियो के बारे मे बडी विचित्र धारणाए बनाये हुए थीं। महर्षि दयानन्द का पाठ पूरा करने के बाद दूसरे दिन मैंनें विद्यालय के हॉल में आर्यसमाजी विद्वानों का एक अच्छा कार्यक्रम रखा। बाकायदा कक्षा नवीं से ग्यारहवीं तक की सभी छात्राओं को शामिल किया। आर्य समाजी विद्वानों से बाकायदा यज्ञ करवाया। आहुतियाँ देने के लिए कक्षा दसवीं की छात्राओ को आगे बैठाया (यजमान बनाया) और वैदिक ऋचाओं से विद्यालय का हॉल गूँज उठा। यह पहला मौका थाजब कि ओसवाल–माहेश्वरी छात्राओं ने खूब उत्साह के साथ 'स्वाहा' का बुलन्द उच्चारण करते हुए समवेत स्वरो से ऋचाए बोलने का आनन्द लिया। इसके बाद आर्य समाजी परम्परा के अनुसार एक छोटे से शास्त्रार्थ का दृश्य भी आर्य समाजी विद्वानों द्वारा छात्राओं के सामने प्रस्तुत किया गया। उस दिन सारे विद्यालय का वातावरण बदल गया। आसपास के घरो–परिवारों के लोग आपस में

तथा शाला में पूछताछ करने लगे कि शाला में हो क्या रहा है ? रोजाना के बधे–बधाये 'रुटीन' से हट कर जब ऐसे कार्यक्रम होते हैं तो एक बार के लिए पाठ्यक्रम से प्रतिबद्ध दिमाग वाले अध्यापकों और अभिभावकों के लिये तो यह सब एक गोरखधधा ही महसूस होता है। शाला की अन्य कक्षाओं के बच्चे भी ऐसे हालात में कक्षा में बधने के बजाय दर्शक बनना चाहते हैं अत एक बार तो सारा वातावरण इतना हलचल वाला बन जाता है कि शाला के अनुशासन को बनाये रखने में अध्यापकों को विशेष शक्ति खपानी पडती है जिसके लिए प्राय प्रतिबद्ध अध्यापक लोग तैयार नहीं होते। इन हालात में प्रधानाध्यापक और विद्यालय यदि प्राइवेट हो तो उसके सचालक समुदाय की मानसिक स्थिति पर बहुत कुछ निर्भर करता है। मुझे इस तरह के प्रयोग करते समय इन सब स्थितियों का सामना करना पडा है।

भैरवरत्न विद्यालय के ठीक विपरीत लालगढ के रेलवे वर्कशॉप के इलाके में राष्ट्र उन्नति विद्यालय के छात्र उन परिवारों से मिले जो मुँह पर पटटीधारी साधु–साध्वियो के स्वरूप से बिलकुल अजान थे। अत इस विद्यालय में मैंने शहर के अन्दरूनी इलाके से तेरापथी जैन साधु–साध्वियों का एक समुदाय आमन्त्रित करके एक सामूहिक कार्यक्रम रखा। उस दिन उन पट्टीधारी साधुओं के स्वरूप को देख कर विद्यालय के छात्र–छात्राओं के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। लग रहा था मानों इस इलाके के बच्चो के लिए वह कोई अजायबघर के अजूबे रहे हों। जब पटटी बाँधे–बाँधे ही साधु–साध्वी गण अपना प्रवचन देने लगे तो छात्रों की कल्पना का विषय नहीं था कि क्या ऐसे बोला भी जा सकता है ? मैं इस आयोजन द्वारा यह सोच रहा था कि हमारी शिक्षा व्यवस्था की कितनी विसगति है कि एक तरफ तो हम छात्रों को हमारी विविधता भरी सस्कृति पर गौरव करना सिखलाना चाहते हैं और दूसरी तरफ हमारी नई पीढियाँ उन विविधताओं से प्रथम परिचय भी प्राप्त नहीं कर पातीं। अध्यापक और अभिभावक ऐसा परिचय दिलाना न तो आवश्यक समझते है और न प्रयास करने की पहल करते हैं।

जैन साधुओं के कार्यक्रम के बाद करीब एक हफ्ते तक शाला में कई नैतिक व धार्मिक प्रश्नोत्तरों का सिलसिला चलता रहा। छात्र–छात्राओं ने अपनी भरपूर जिज्ञासाए अपनी कक्षाओं में अपने अध्यापको के सामने रखीं। अध्यापक उन तर्क–विर्तक से भरे जिज्ञासापूर्ण प्रश्नों को लिखकर मेरे पास भेज देते और प्रार्थना की परेड में उन जिज्ञासाओं का समाधान सामूहिक रूप से मैं अपनी सकरात्मक शैली–शब्दावली द्वारा कर देता था। एक अच्छा चिन्तन का दौर चल पडा था जो रोजाना के पाठ्यक्रम के प्रश्न उत्तर व होमवर्क से अलग था।

इसी राष्ट्र उन्नति विद्यालय का एक रोचक प्रसग मैं भूल नहीं सकता जब कि 1978 में मान्तेसोरि कक्षाओं के शिशुओं को बन्द सीमाओं से निकाल कर मैंने यह नियम लागू किया कि हर हफ्ते में एक दिन एक सैक्शन के बच्चों को लेकर आसपास में निकटतम मन्दिर–मसजिद दिखलाकर लाया जावे। इस विद्यालय में मुस्लिम और सिक्ख परिवारों के बच्चे भी काफी सख्या में मिले। विद्यालय के निकट ही एक शिव मन्दिर एक गुरुद्वारा और एक मसजिद –तीनों ही मौजूद हैं लेकिन कभी इनका सामूहिक दर्शन बच्चो को नहीं कराया गया था। मेरा यह हर हफ्ते एक–एक सैक्शन के बच्चों को

ले जाने का निर्णय सुनते ही शिशु कक्षाओं के अध्यापक–अध्यापिकाओं की स्थिति स्थापकता को एक बहुत बडा झटका लगा। दबे स्वरों मे कुछ बुदबुदाहट मेरे सुनने में आई। अत पहले इन अध्यापक अध्यापिकाओं को ही मैंने अपने कार्यालय में बुलाकर अपनी धारणा स्पष्ट की। उनकी छोटी–मोटी कठिनाइयों को दूर किया हौंसला बढाया विशेषकर महिला अध्यापिकाओं को यह महसूस कराया कि शिव मन्दिर में ले जाने में जब आपको कोई झिझक नही है तो मसजिद गुरूद्वारे में भी आपको किसी विपरीत परिस्थिति का सामना नहीं करना पडेगा। शिक्षकों का मानस मजबूत करके शिशु विभाग के इनचार्ज श्रीनजर मोहम्मद खान को मैंने सारी हिदायतें स्पष्ट करके पहला बैच पहले शनिवार को रवाना किया। मैंने यह जोर देकर कहा था कि बच्चों के हाव–भाव उनकी कमेण्टस उनकी जिज्ञासाए आदि एक कॉपी में लिखित रूप में नोट की जावें। वह लिखित विवरण ही इस कार्यक्रम का मूल्याकन दे सकेगा।

चार सैक्शन के बच्चे बारी–बारी से चार हफ्तों में इस दौर को पूरा कर गये। जो लिखित नोटिंग और रिपोर्टिंग सामने आई तो हम सबके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा और सबने यह महसूस किया कि शिक्षा क्षेत्र मे केवल पाठयक्रम और होमवर्क तक बच्चों को बाँधकर हम उनके साथ सही और पूरा न्याय नही करते। अलग–अलग समुदायो के परिवारों में जीने वाले ये छोटे–छोटे बच्चे कितनी सवेदना कितना स्पन्दन कितना आकर्षण महसूस करते हैं जब वे अपने परिवार से भिन्न अन्य वातावरण को देखते हैं ? बच्चो के प्रश्न अपने आप फूट पडते हैं। कुशल से कुशल अध्यापक भी एक बार उन प्रश्नों का सही जवाब देने में अपने–आपको असमर्थ पाता है। बच्चे कितने खुश कि पूछो मत। चलने में कोई थका नहीं। जो कुछ देखते उसके बाद आपस मे बातें करते देखी हुई महसूस की हुई बातो पर इस तरह से आपस में बहस करते कि उस सब का सजगता स नोट किया गया विवरण कई दिनो तक कवल शिशु कक्षा के शिक्षकों में ही नहीं बल्कि अन्य बडी कक्षाआ के शिक्षक–शिक्षकाओं मे भी चर्चा का विषय बना रहा।

मैंने अपने परिचित अभिभावको तथा इनचार्ज शिक्षक द्वारा मौलवी साहब पडितजी और पुजारी जी आदि सब पूजा स्थलो के अधिष्ठाताओं से यह निवेदन कर दिया था कि हमारे बच्चे जब भी पहुँचें तब वे एक बार के लिए उसी समय अपने पूरे विधि विधान से आरती –अजान और सबद पाठ आदि की प्रक्रिया बच्चों को दिखलावे। देखने लायक दृश्य तो उस समय था जब मन्दिर मे सबने हाथ जोडे साष्टाग किया मस्जिद मे घुटने टेके और गुरूद्वारे मे मत्था टेका। बच्चों के जिज्ञासा भरे प्रश्नो मे से एक बच्चे का प्रश्न आज भी मेरे लिए प्रश्न ही बना हुआ है क्योकि शिशु स्तर के उन बच्चो को क्या जवाब और कैसा जवाब मैं देता –यह आज तक समझ में नहीं आया। एक बच्चे ने सहज भाव से अपनी अध्यापिका से पूछा– 'मैडम मसजिद में घटी क्यो नहीं रखते बजाने के लिये ? मैडम तो मुक्त हो गईं यह कह कर कि कल हैडसर बताएगे। लेकिन मैं आज तक मुक्त नहीं हो सका बँधा हुआ ही हूँ कि शिशु कक्षा के बच्चे को इस प्रश्न का ऐसा कौनसा उत्तर दूँ कि जो सन्तोषजनक हो और बच्चे की जिज्ञासा को शान्त कर सके। शर्त यह है कि उस उत्तर से कोई अज्ञात हिन्दू–मुस्लिम पूर्वाग्रह उस शिशु के मन में घर न कर लें।

□□

4 ना मन्दिर-मसजिद की भाषा फिर भी नैतिकता की आशा ?

छात्र छात्राओं में जीवन मूल्य प्रशिक्षण केवल आदर्श सैद्धान्तिक चर्चा मात्र नहीं है बल्कि यह जीवन मूल्य प्रशिक्षण अपने आप में एक पूरी कला तकनीक और व्यवस्थित प्रक्रिया है जिसमें से छात्र छात्राओं के गुजरते समय बहुत सावधानी के साथ Views Values and Vision' (Three Vs) का धनी अध्यापक चाहिये जो देश काल परिस्थिति तीनों का सजग एव सकारात्मक समन्वयात्मक तथा नई पुरानी मान्यताओं के बीच सन्तुलन साधक हो। सबसे बडी बात तो यह है कि इस धर्म दर्शन की विविधता के धनी हिन्दुस्तान में जीवन मूल्य प्रशिक्षण के समय शिक्षक को अपने व्यक्तिगत धर्म पथ या गुरू का ठप्पा लगाने का मोह तो ईमानदारी से छोडना होगा। धार्मिकता और नैतिकता में कितना अन्तर है और शाला की सीमाओं में हमें इन दोनों में से किसको कितना कब और किस तरह महत्व दे कर सन्तुलन को बनाये रखना है इस सब बातों का विवेकपूर्ण व्यावहारिक अनुभव उस शिक्षक के लिये बहुत जरूरी है जो जीवनमूल्य प्रशिक्षण का कार्य करने का बीडा उठाये। मॉब साइकॉलोजी को हर समय ध्यान में रखे बिना इस कार्य को करने से अध्यापक द्वारा बोला गया एक शब्द और एक वाक्य मात्र सुनकर केवल छात्र ही नहीं बल्कि अभिभावक तक मामला पेचीदा बन जाता है।

इन सब खतरो को मोल लेकर भी जीवन–मूल्य प्रशिक्षण के मेरे प्रयोग बराबर चलते रहे। मूल्य–मानस–प्रशिक्षण मे जैसा मैं पहले अध्याय में भी लिख चुका हूँ कि लेबल मुक्त यानि किसी भी विशेष धर्म पथ और ग्रन्थ के ठप्पे को लगाये बिना नैतिक शिक्षा का लक्ष्य हम किस तरह सफल करें यह मूल्य–प्रशिक्षण का मूल प्रयोग का विषय है। इस दिशा में पहला सूत्र है– व्यक्ति को व्यक्ति के प्रति आस्थावान बनाया जाय। अध्यात्म की ऊँचाई तो कहती है कि प्राणी मात्र के प्रति ईश्वरीय आस्था जगाई जावे किन्तु उस ऊँचाई तक पहुँचाने की धुन मे हम छात्रो को बुनियादी धरातल से ही वचित कर देते हैं। अत आधिदैविक और आध्यात्मिक ऊँचाईयों पर ले जाने से पहले हम नई पीढी को व्यक्ति के प्रति सवेदनशील कृतज्ञ आस्थावान बनाने की कोशिश कर लें तो बेहतर

होगा। मन्दिर–मस्जिद या गिरिजाघर गुरुद्वारा अथवा गुरु–सन्त–महन्त तथा ग्रन्थ आदि के सहारे के बिना उपयुक्त शैली–शब्दावली द्वारा नैतिकता किस तरह नई पीढी में लाई जावे–यह एक प्रयोग का विषय है। यह प्रयोग करने से पहले एक चिर संचित मान्यता को बदलने या परिष्कार करने की आवश्यकता है। उदाहरण के लिये हमने प्राय दैनिक जीवन में यह बड़े आदर्श सिद्धान्त और आस्था के रूप में कहते हुए लोगों से सुना होगा कि 'हम तो भगवान से डरते हैं अन्य किसी से क्यों डरें ?

अत कार्य संस्थान में कर्मचारी अपने सह–कर्मचारी और अधिकारी से घर–परिवार में छोटे अपने बडो से मोहल्ले–मोहल्ले में पडौसी अपने पड़ौसी से क्यों डरे ? क्यों परस्पर एहसान और सहानुभूति का एहसास करे ? अत यदि हमें रूढिग्रस्त धर्म पथ ग्रन्थ मन्दिर–मस्जिद आदि की विविधता की विवादग्रस्तता से बचा कर नई पीढी को नैतिकता की दिशा में ले जाना है तो हमें नई पीढी में व्यक्ति के प्रति व्यक्ति की आस्था को इन्सान के प्रति इन्सान की सहानुभूति को Consideration for others को जगाना होगा। हमें एक कवि की इस शब्दावली को समझना होगा कि–

'क्या करेगा प्यार वो भगवान को
क्या करेगा प्यार वो ईमान को
जन्म लेकर गोद में इन्सान की
कर न पाया प्यार जो इन्सान को

मेरा तात्पर्य यह नहीं है कि धर्म पथ ग्रन्थ आदि के प्रति आस्था श्रद्धा हमें तोडनी है खण्डन करना है। नहीं बिल्कुल नहीं। खण्डन की प्रक्रिया को तो शाला शिक्षण और शिक्षा क्षेत्र से दूर रखना है। व्यक्ति के प्रति इन्सान के प्रति आस्था तो हर धर्म अपने–अपने तरीके से दे रहा है लेकिन हमारे देश मे इन धर्मों–पथो की इतनी विविधता हो चुकी है कि जिस किसी भी धर्म पथ वाद और गुरु के अनुसार यह इन्सानी आस्था जगाने की बात कहे तो अन्य धर्म पथ की टकराहट तुरन्त सामने खडी हो जाती है। अत आज शाला शिक्षा और शिक्षक के सामने सबसे बडी समस्या ही यही है कि इन विविधताओं के विवाद से बचा कर नैतिकता और इन्सानी आस्था अब किस शैली–शब्दावली द्वारा दी जावे ? इस दिशामे तीन सकारात्मक (+Ve) विचार देने होंगे –

1 भगवान डरने–डराने का प्रतीक नहीं है बल्कि प्रेम दया और क्षमा का प्रतीक है।
2 डरना भी है तो इन्सान से डरो सह मानव से डरो माता–पिता–अध्यापक से डरो जिनके बीच हमें चौबीसों घटे जीना है व्यवहार करना है साँस लेना है।
3 डर और भय की शब्दावली को भी हमे अन्तत दूर करनी है। अभय और निभय की दिशा में ले जाना है अत अभय के नाम पर अविनय कतघ्नता निर्ममता आदि नहीं जाग उठे अत भय को हमें सकोच मे बदलना होगा। सकोच यानि आँख की शर्म सम्बन्धों का लिहाज परस्पर एहसान का एहसास। दूसरे को मेरे कारण 'फील नहीं हो जाये–यह 'फीलिग जगानी है।

इस विचार प्रवाह की दिशा में अब मेरे प्रत्यक्ष प्रयोग उल्लेखनीय हैं।

यात सन् 1985 की है। मेरे बेटे को टाइफाइड और मलेरिया दोनों का एक साथ बुखार चढा। बीमारी इतनी बिगड चुकी थी कि बेटा इसमे मरता–मरता बचा। मेरे बड़े भाई साहब और पडौसी मित्र परिवारों की जो सेवा और उनका जो सहयोग मिला वह जीवन भर भूला नहीं जा सकता। डॉ विजय बोथरा ने स्वय रात–रात भर सेवा और चिकित्सा द्वारा जो जीवन–दान दिया कि बेटा बच गया।

दो–तीन हफ्तों की छुटटी मुझे लेनी पडी जिसके बाद जब मैं स्कूल पहुँचा और प्रार्थना की परेड में बोलने को खडा हुआ तो मैंने बेटे की बीमारी का ही प्रसग उठाया। मेरा स्वभाव मेरी शैली और शब्दावली का तौर–तरीका शुरू से ही यह रहा है कि मैं रोजाना की जिन्दगी के –घर–परिवार– सेवा सस्थान की घटनाओ के प्रत्यक्ष उदाहरण पेश करता हूँ जिनसे छात्रों की तादात्म्यता आसानी से सभव हो जाती है। पौराणिक कथाओं अथवा धार्मिक कथा शैली के अनुसार कहानियों की घटनाओं की तुलना में प्रत्यक्ष घटनाओं और अखबारों के समाचारों के उदाहरणों का प्रभाव छात्रो पर शीघ्र और तीव्र पड़ता है– ऐसा मेरा स्पष्ट अनुभव रहा है। प्रार्थना के बाद उस दिन मैंने अपनी बात को इस तरह रखा–

प्यारे बच्चों! आपको सारी जानकारी रही है कि मैं इतने दिन छुट्टी पर क्यों था ? मेरा बेटा तेजटाइफाइड और मलेरिया के मिश्रित बुखार से मरता–मरता बच गया। बिलकुल ठीक होने पर जब वह अपनी ड्यूटी पर हनुमानगढ जाने लगा तब हमारे घर में एक प्रश्न खड़ा हुआ। घर में सब लोग इस बात पर जोर दे रहे थे कि हनुमानगढ जाने से पहले बाबू को मन्दिर में दर्शन करने भेजा जावे भगवान को प्रसाद चढाया जावे भगवान ने बचाया है। मैंने कहा कि भगवान ने स्वय आ कर बचाया है या डॉ की चिकित्सा तथा अन्य सब की सेवा ने बचाया है ? मेरा यह कहना ही था कि सब लोग नाराज हो गये। मैंने फिर सबसे कहा कि भगवान को प्रसाद बाद में चढा देना वे नाराज नहीं होंगे क्योंकि हमारे बेटे को बचाने के लिये ही तो भगवान ने डॉक्टर चिकित्सा के लिए तथा अन्य सबको इसकी सेवा के लिए प्रेरित किया। इन्हीं के रूप में इन्हीं के माध्यम से भगवान ने आकर बचाया। इसलिये सबसे पहले बाबू को ताऊजी के चरण छूने के लिए उनके घर भेजो और फिर पडौसी मित्रों के घर उनको हृदय से धन्यवाद देते हुए पैर छूने भेजो। भगवान तो बिलकुल नाराज नहीं होगे। कबीर का एक दोहा सभी बच्चो ने पढा है कि गोविन्द से गुरु बडे हैं क्योंकि गुरु के माध्यम से गोविन्द ने ही भक्त को अपने से मिलने का मार्ग बताया। भगवान ने ही चिकित्सा और सेवा करने वालो के माध्यम से ही बाबू को बचाया। यदि बाबू इन सबको धन्यवाद दिये बिना कृतज्ञता प्रकट किये बिना हनुमानगढ रवाना हो गया तो उन सबको कितना 'फील' होगा ? आखिर मेरी बात सबको ठीक लगी। बाबू ने उन सबके घर जाकर पहले चरण छुए आशीर्वाद लिया। समय काफी लग गया। वह मन्दिर नहीं जा सका। मैंने कहा–कोई बात नहीं हनुमानगढ मे मन्दिर में प्रसाद चढा देना बीकानेर मे न सही। भगवान तो सभी जगह हैं लेकिन ये सब लोग तो हनुमानगढ मे नहीं मिलेंगे। बाबू को बात ठीक लगी। वह कल रात को हनुमानगढ चला गया और आज मैं स्कूल आ गया।

मैंने इतनी बता बोलकर न तो कोई 'मोरल' पेश किया जैसा कि प्राय कोई कहानी कहने के बाद हम लोग कहा करते है कि 'बच्चों इस कहानी से तुम्हें शिक्षा मिलती है कि । लेकिन मैंने ऐसी कोई शिक्षा स्थापित नहीं की। ना मैंने यह आग्रह या ऑर्डर दिया कि तुम भी ऐसा ही करना।

लेकिन मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा जब चार–पाँच हफ्तों के बाद हर दूसरे या तीसरे दिन कोई न कोई अभिभावक मेरे दफ्तर में केवल यही खुशी प्रकट करने के लिए आते रहे कि आपने ऐसा क्या ऑर्डर दे दिया जो बीमारी से उठते ही हमारे बच्चे पहले डॉक्टर और पडौसी के यहाँ धन्यवाद देने हमें भी साथ लेकर जाते हैं। एक अभिभावक करीब चार महीने बाद आए। कहने लगे–

पकज को कल उल्टी–दस्त अधिक होने के कारण छुट्टी दिलानी पडी। अर्जी लिख नहीं सके। आज उसे कक्षा में बैठने दीजिएगा। पर एक बात है सा'ब आप बुरा नहीं मानें तो पूछना चाहता हूँ कि अब आपने कोई नया नियम बनाया है क्या कि बीमार पडने क बाद डॉक्टर और पडौसी को धन्यवाद देने जाना पडेगा ?

मुझे मन ही मन बात का आनन्द आ रहा था। मैं तो समझ रहा था कि न मैंने ऑर्डर दिया था न कोई नियम बनाया था। नई पीढी पर मानस निर्माण का एक प्रयोग किया था। मेरे द्वारा इस प्रयोग की बात सुनकर वह अभिभावक सन्तुष्ट हो कर चले गये।

□□

5 पुस्तको का प्रसाद बोलो

पिछले बहुत वर्षों से शालाओं में एक निर्धन छात्र पुस्तकालय (Poor Boys Library) सचालित करने की योजना पर शिक्षा विभाग ने बहुत बल दिया। शालाओं के निरीक्षण बिन्दुओं में ऐसे पुस्तकालय का निरीक्षण प्रमुख रूप से शामिल किया गया। करीब सन् 1980 के आसपास की बात है। हमने अपनी शाला में ऐसे पुस्तकालय का *गठन करके एक इनचार्ज बना दिया और एक ऑर्डर निकाल दिया। किन्तु, लगातार* दो सत्र निकल गये इस पुस्तकालय मे छात्रो ने पुस्तकें ला कर जमा सख्या बढाने मे कोई रूचि नहीं ली और यह गतिविधि जिस तरह चलनी चाहिये थी वैसी नहीं चली। ऐसी हालत में उस साल सालाना परीक्षा के रोल नम्बर जब बाँट दिये गये परीक्षा का टाइमटेबल भी दे दिया गया तब तैयारी अवकाश से दो–तीन दिन पहले प्रार्थना सभा में मैंने छात्रों से अपील की–

मेरे प्यारे बच्चों। आपकी सालाना परीक्षा शुरू होने वाली है। मैं जानता हूँ कि आप सब अभी परीक्षा की तैयारी में जोर–शोर से लगे हुए हैं। आप लोगों में से अनेक छात्र–छात्राओं ने अपने–अपने इष्ट देवी–देवताओं के नाम प्रसाद भी बोल रखे हैं। मेरी शुभकामना है कि आपके देवी–देवता आप को सफल होने की शक्ति देवें और आप उन्हें प्रसाद चढायें।

किन्तु, इस बार एक नये तरह का प्रसाद आप स्कूल के नाम बोलेंगे। आखिर भगवान ने तुम्हारी शिक्षा–परीक्षा के लिए स्कूल को आधार बनाया है तो स्कूल के नाम भी प्रसाद बोलिये। आप सब जानते हैं कि अपनी शाला में निर्धन छात्र पुस्तकालय की व्यवस्था है। उस व्यवस्था को सफल करने के लिए जो बच्चे पास हो जावें वे अपनी किताबें शाला के नाम भेंट कर दें। तो आज आप सब मन ही मन सकल्प करें और पुस्तकों का प्रसाद शाला–मन्दिर में चढाने की मान्यता मन ही मन बोल दें। मेरी शुभकामना है कि आपकी मान्यता सफल हो।

इसके बाद परीक्षा पूरी हुई। प्रगतिपत्र दिये गये। आश्चर्य की बात है कि आशा से भी चौगुनी किताबों के सैट बच्चों ने जमा कर दिये। निर्धन छात्र पुस्तकालय जोर शोर से अगले सत्र में चल पडा। बच्चों को यह महसूस हुआ कि जिस शाला से हम अपने जीवन निर्माण के लिए ज्ञान का लाभ ले रहे हैं उस शाला के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने का यह भी एक तरीका है। शाला के कमजोर आर्थिक वर्ग वाले बच्चों के लिए भी यह प्रसाद वरदान बनेगा। इस अन्दरूनी भावना के जागरण के साथ यह पुस्तकों का प्रसाद बोला गया वह भावना इस सारे प्रयोग का केन्द्र बिन्दु रही।

□□

Unit-II

दण्ड का शिक्षण में प्रयोग

शिक्षा और शिक्षण ये दोनों शब्द मनुष्य के जीवन निर्माण से जुडे हुए हैं। मनुष्य अपने जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त शिक्षा और शिक्षण से किसी न किसी रूप में जुडा रहता है। साधारण तौर पर आजकल की धारणा के अनुसार स्कूल–कॉलेज की पढाई छोड देने पर हम लोग यह मान लेते हैं कि शिक्षा का काम और क्रम बन्द हो गया किन्तु शिक्षा और शिक्षण का क्षेत्र बहुत व्यापक है। प्रमुख रूप से घर–परिवार और शाला स्तर तक की सीमा मे सैकेण्डरी–हायर सैकेण्डरी तक व्यक्ति की शिक्षा और शिक्षण की जब भी बात उठती है तब सदियों–सदियों से चला आने वाला वाक्य बडे गर्व और गौरव के साथ दोहराया जाता है Spare the rod and spoil the child बडे आत्म विश्वास के साथ बडे–बडे शिक्षा–शास्त्रियों अभिभावकों और सलाहकारों को यह वाक्य दोहराते हुए आज भी हम सुन सकते हैं। बडी उम्र मे व्यक्ति के सुधरने के लिए फिर ऐसे ही समझदार लोग यह कहते हुए मिलते हैं कि 'ठोकर खाएगा तब अपने आप सुधरेगा। सस्कृत में भी इस प्रकार की उक्ति प्रचलित है कि पॉच वर्ष की उम्र तक बच्चे को प्यार का व्यवहार दो। उसके बाद ताडना यानि दण्ड देना शुरू करो किन्तु 'षोडशे वर्षे पुत्र मित्र समाचरेत् यानि सोलह वर्ष की उम्र के बाद सन्तान को मित्र के समान व्यवहार दो। चलो गनीमत है कि सस्कृत के पडितो ने इतना तो स्वीकार किया कि सोलह साल की उम्र के बाद दण्ड का प्रयोग बेकार है।

1 दण्ड के विभिन्न नमूने

जैसे–जैसे युग बदलता गया शिक्षा क्षेत्र में वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक प्रयोग बढते गये वैसे–वैसे दुनियाँ के सभी देशों में शिक्षा और शिक्षण के क्षेत्र से दण्ड और डण्डे का प्रयोग बुरा और बेकार माना जाने लगा। समय ने इतनी करवट बदली कि जेल (कारागृह) को भी सुधार गृह शब्द दे कर कैदियो को भी दण्ड देने के तौर–तरीकों मे जमीन–आसमान का अतर आ गया। कैदियो पर ध्यान प्राणायाम और यौगिक क्रियाओं के प्रयोग किये जा रहे हैं। तब शालाओं में दण्ड के स्थान पर ऐसे प्रयोग क्यो नहीं किये जावें ? घर–परिवार में भी अपने आपको धुरन्धर शिक्षाशास्त्री मनशास्त्री चिकित्साशास्त्री समझने वाले अभिभावक घर के बच्चो पर शुरू से ही ऐसे प्रयोग क्यो नहीं करते ? पर करने से पहले स्वय प्रशिक्षण लेकर सही प्रयोग करे अन्यथा लेने के देने पड सकते हैं।

ध्यान योग अध्यात्म शब्दों का कुछ आकर्षण बढ रहा है किन्तु इस दिशा के अच्छे पहुँचे हुए साधकों के बिना बच्चों के विक्षिप्त होने की सभावनाए और खतरे भी मुझे देखने को मिले हैं।

अत मेरी दृष्टि में और शाला स्तर पर मेरे प्रत्यक्ष प्रयोगों के आधार पर मेरी अपनी मान्यता यह बनी है कि शिक्षण जगत मे दण्ड और डण्डा तथा हाथों से भी थप्पड–मुक्कों का प्रयोग शिक्षक के मन–मस्तिष्क से जब तक अपना पूर्ण अस्तित्व नहीं हटा लेता तब तक शिक्षक के मन से सजा के प्रति आकर्षण या उसकी सार्थकता पूरी तरह से दूर नहीं हो जाती तब तक दण्ड के प्रति आस्था बनी रहेगी और जब यह आस्था जड–मूल से समाप्त नहीं होगी तब तक शिक्षकों एव शाला प्रधानों के दरबार मे नीचे लिखे दृश्य देखने को मिलते रहेगे–

1 डण्डे से बेत से फुट (स्केल) से पिटाई
2 बाल पकड कर हाथ मरोड कर थप्पड मुक्को से धुनाई।
3 डस्टर ही फेक कर मारना और प्राय सिर से खून बहा देना। (मैंने ऐसी शिकायतें सम्हाली हैं।)
4 सिर पकड कर दीवार से टकरा देना।
5 मुर्गा बना देना कक्षा मे खडा कर देना कक्षा से बाहर निकाल देना।
6 मैदान के चक्कर निकलवाना।
7 हाथ ऊपर करके खडा कर देना। (लडकियो को भी)
8 अगुलियों के बीच में पैन पेन्सिल रख कर बुरी तरह दबा देना।

और भी न जाने कितने नये–नये तरीके सजाओं के शिक्षक खोज लाते हैं जिनकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

□□

2. डण्डे से सिर फोड सकते हे, मोड नहीं सकते

लेकिन अब हम नीचे लिखे तथ्यों व तत्वों पर ध्यान देवें–

1 हम छात्र की मूल प्रवृत्ति को बड़ी बारीकी से समझने और पहिचानने की कोशिश करें कि क्या छात्र बाल सुलभ हकरतें करके दण्ड का पात्र बन रहा है या अपराधी वृत्ति के कारण दण्ड का पात्र बन रहा है ? शिक्षा विभाग और अपराध विभाग के अन्तर को हम समझें। अपराधवृति के छात्रों के लिए समाज में कुछ शालाएं ऐसी भी "पेशल खुलनी चाहिये जैसे अपग अन्ध मूक–बधिर आदि के लिए अलग शालाएं अलग ढग से चलती हैं। इससे अपराधी वृत्ति के बच्चों के कारण अन्य बच्चो पर कुप्रभाव तथा 'इनफेक्शन' का प्रभाव नहीं पडे। जब तक समाज में ऐसी व्यवस्था नहीं होती तब तक शालाओ में अपराध–वृत्ति के छात्रों के कारण दण्ड की स्थितियाँ बनी रहेंगी और परेशान शिक्षक दण्ड के प्रति आस्था बदल नहीं सकेगा। आजकल जब बाल न्यायालय भी अलग से चल रहे हैं तो अपराधी वृत्ति के बालक–बालिकाओं के लिए कुछ स्पेशल स्कूल चलने चाहिये। तब तक अपराधीवृत्तिवालों के अलावा अन्य छात्रों पर शिक्षकों को स्वय बौद्धिक–मानसिक रूप में बाल सुलभ हरकतों पर दण्ड का प्रयोग अथवा पढाई का काम नहीं करने के कारण दण्ड का प्रयोग स्वप्न में भी नहीं करना चाहिए।

2 हम गीता की दुहाई देते हैं गीता को 'कोट' करते हैं लेकिन यह क्यों नहीं समझ पाते कि कृष्ण ने अपराधियो को दण्ड का पात्र माना और दण्ड दिया भी लेकिन शिक्षक के रूप में कष्ण का स्वरूप इस बात से ही समझा जा सकता है कि अर्जुन बार–बार अपनी अज्ञानता और शकाए पेश करता है लेकिन कष्ण ने एक बार भी उसके सिर पर डडा नहीं मारा बल्कि अन्त मे अर्जुन के निर्णय पर छोड दिया कि हे अर्जुन तुम्हें जो उचित लगे वह करो। **शिक्षक मार्ग दर्शक होता है मस्तक-भजक नहीं।** मैं अपनी समूची जिन्दगी मे छात्रो और अध्यापकों के बीच एक वाक्य सदा दोहराता आया हूँ कि **डण्डे से हम सिर फोड सकते हैं मोड नहीं सकते। शिक्षक का काम सिर मोडना (Brain washing and Mind making) है सिर फोडना नहीं।**

3 हम शिक्षक यह क्यो भूल जाते हैं कि मानसिक–बौद्धिक स्तर हर बच्चे का अलग–अलग है जो उसकी कुदरत की देन है। कुदरत की देन को शाला शिक्षक और अभिभावक मार्गीकरण (चैनलाइजेशन) तो कर सकते हैं लेकिन बदल नहीं सकते समाप्त नहीं कर सकते।

4 अत जब--जब शिक्षा की सीमा मे दण्ड की बात उठे तब--तब शिक्षक कहे जाने वाले व्यक्ति को यह समझना होगा कि--

शिक्षक दण्ड के रूप में दण्ड नहीं देता बल्कि अपनी ही असहनशीलता अपनी ही खीझ अधीरता न्याय बोध की अभावग्रस्तता अपने ही बिगडे हुए मूड की विकृति को दण्ड के रूप में बच्चों पर थोपता है। छात्र छात्रओं को उनकी ऊर्जा के अनुसार चैनेलाइज नहीं कर सकने की साधन सुविधा व तकनीकी क्षमता के अभाव में तथा शिक्षण कला एव दर्शन को हृदय से ग्रहण नहीं कर सकने के कारण हम दण्ड को आवश्यक तथा महत्त्वपूर्ण मानने का यश प्रदान करके अपनी खुद की शिक्षकीय कमियों पर परदा डालने का असफल प्रयास करते हैं। --रावल

मेरी पुस्तक 'व्यक्ति की तलाश' और 'शिक्षा स्वय एक मिशन' में दण्ड और छात्रों में नैतिक शिक्षा अनुशासनहीनता आदि के शीर्षकों पर काफी कुछ लिखा है। मुझे इस *बात पर आश्चर्य और घृणा दोनों का एहसास होता है कि शिक्षक बनने या शिक्षक कहलाने* वाले व्यक्ति में सौ साल पुरानी आस्था डण्डे और दण्ड के प्रति ज्यों की त्यो बनी हुई है जबकि B Ed M.Ed आदि की डिग्रीयाँ लेते समय न जाने कितना मनोविज्ञान उसने पढा है। शिक्षण मे नवाचार कितने करवट बदल चुका है उस तरफ शिक्षक झाकने को तैयार नहीं ?

अनुशासन के नाम पर भय की आवश्यकता और सार्थकता की दुहाई देता हुआ शिक्षक प्राय डण्डे पर सिद्धान्त का लेबल लगाकर अपनी दण्ड धारणा को सही ठहराता है तब उस समय मेरा मानस तिलमिला उठता है। मैं अनुशासन की दिशा मे भय की प्रवृत्ति को सकोच यानि आँख की शर्म और सम्बन्धो के लिहाज में बदल देना चाहता हूँ। बच्चे को हमें यह सिखाना है कि उसको हर समय यह सोचना होगा कि उसके किसी आचार--विचार व्यवहार से उसके माता--पिता--गुरु को कहीं 'फील' न हो जाय।

अब कुछ दण्ड देने वाले दण्ड नीति के धनी कुछ अध्यापको द्वारा दण्ड दे चुकने के बाद बच्चों पर होने वाली प्रतिक्रियाओ के भी कुछ नमूने विचारणीय हैं--

□□

3. प्रचलित सजाओ की प्रतिक्रियाए

1 एक सीनियर सैकेण्डरी स्कूल के सचालक छात्रो को डण्डे के जोर पर काबू में रखने के बहुत बडे समर्थक थे। जीवन भर उन्हें इस बात का गर्व और गौरव महसूस होता रहा था कि उनका डण्डे का भय तथा डण्डे का अनुशासन पूरे नगर मे विख्यात रहा। एक दिन दसवीं कक्षा में वे अपने तौर–तरीके से कई बच्चों को डण्डे से लात–घूसों से पिटाई करे जा रहे थे। पीटते–पीटते एक छात्र तक ऐसी स्थिति हुई कि जैसे ही सचालक ने डडा उठाया और उस छात्र ने सचालक का हाथ इतने बल से पकडा कि सारी कक्षा आश्चर्यचकित रह गई। सचालक का पानी उतर गया। छात्र ने दृढता से कहा– 'खबरदार ! सबको एक जैसा मत समझ लेना। उसी वक्त उसने अपनी किताबें उठाई और तेज रफ्तार में कक्षा से चला गया। बाद में उसे टी सी दे दी गई। टी सी देकर सचालक ने गर्व अनुभव किया किन्तु छात्र द्वारा हाथ पकडे जाने से पानी उतरने का अनुभव नहीं किया। दण्ड की प्रक्रिया पर आगे सोचने की कोशिश नहीं की।

2 एक सैकेण्डरी स्कूल की नवीं–दसवीं की लडकियो को इनचार्ज तथा अन्य अध्यापिकाएँ दण्ड के तौर पर कक्षा से बाहर निकाल कर लाइन बनाकर हाथ ऊपर उठवाकर दोनो हाथो से दोनो कान पकडवाकर चौकोर चौक (आगन) के चार चक्कर निकलवाया करती थीं। कुछ दिन तो लडकियाँ रोने लगतीं किन्तु दो एक महीने के बाद एक दिन इनचार्ज ने और विज्ञान की अध्यापिका ने शिकायत पेश की–

'सा'ब दसवीं की लडकियाँ बहुत ढीठ हो गई हैं। होम वर्क पूरा नहीं करती याद करके नहीं सुनातीं और हमारे कहने से पहले ही बोल देती हैं कि मैडम ! हम कान पकड कर चक्कर निकाल आवें ?

मैं यह सुनकर एक बार तो लडकियो की इस सहज ढिठाई पर हँस पडा। अध्यापिकाओ ने सोचा कि मैंने इस शिकायत पर गौर नहीं किया किन्तु फिर सबसे पहले दण्ड प्रक्रिया के प्रति उन अध्यापिकाओं के सोच को बदलने की कोशिश की। दूसरे दिन दसवीं कक्षा में स्वय पहुँच कर अपनी शैली–शब्दावली से छात्राओं की सकोच भावना को जगाया और उस ढीठाई तथा उपेक्षा के वातावरण को बदला।

3 एक अध्यापक अग्रेजी विषय के बडे माने हुई अध्यापक हैं किन्तु वे छात्र की कमजोर ग्रहण शक्ति और कमजोर स्मरण शक्ति को बरदाश्त नहीं कर पाते। अत पढाते

समय मारना–पीटना डाँटना–डपटना गाली–गलौत करना उनका चलता रहता है। व्यग्य में बोलकर झिडकना और पढने वालो को हीन भाव मे लाकर पढाना उनकी गर्व भरी अध्यापन शैली है। मेरे एक घनिष्ठ मित्र का पुत्र एक बार अग्रेजी पढने के लिए उनके पास गया। कुछ दिन तक तो वह उन अध्यापक महोदय की सब ज्यादतियाँ सहन करता रहा। एक दिन बालक की सहनशक्ति जवाब दे गई। जैसे ही अध्यापक ने झिडक कर कहा– तुझे सात जनम में भी अग्रेजी नहीं आएगी। तू तो गधा हाँकना गधा। वैसे ही बालक तुरन्त अपना बस्ता उठाकर घर चला आया। उसे इतनी घृणा हुई कि उसने पढना ही छोड़ दिया। आज तक दसवीं पास नहीं कर सका। बालक वही आज अपने शहर का लखपति व्यापारी है। किन्तु जब कभी हम मित्रों के बच्चो की पढाई–लिखाई की बाते चलती हैं तब उस बच्चे का दसवीं पास नहीं कर सकना आज भी चर्चा का विषय बनता है। इससे उन अध्यापक महोदय का क्या बिगडा ? एक छात्र जरूर शिक्षा और शिक्षक के प्रति उदासीन हो गया। ऐसे एक नहीं अनेक छात्र उपेक्षित हुए हैं। यद्यपि उस छात्र से भी कमजोर छात्र बोर्ड की परीक्षा में बैठते हैं पास होते हैं लेकिन जो हतोत्साहित कर दिये गये उनका क्या इलाज है ?

4 एक मानी हुई सीनियर सैकेण्डरी स्कूल की एक छात्रा (नवीं कक्षा की) बहुत दुखी भाव से रोते हुए एक दिन कहने लगी– अकल ! क्या एस यू पी डब्ल्यू में चित्रकला की कॉपी एक दिन देरी से स्कूल मे देवे तो भी हमे सजा देने का टीचर को अधिकार है ? इतना बोलते–बोलते वह बच्ची फफक–फफक कर रोने लगी। मैं धर्मसकट मे था कि शाला और शिक्षक के सम्मान की रक्षा करूँ या पडौसी छात्रा के टीस भरे घाव की रक्षा करूँ ? फिर भी मैंने एक तरफा जवाब न देकर वापस छात्रा से ही प्रश्न कर लिया कि बात को अधिक स्पष्ट करे और साफ–साफ बताए कि किस टीचर ने सजा दी और कैसी सजा दी ? मालूम पडा कि उस स्कूल के खुद प्रिन्सिपल ने सात–आठ लडकियों को उस दिन पूरे आठ पीरियड तक खडे रहने की सजा दी जिसके कारण पूरी कक्षा में रोष था और छात्राए अपने–अपने अभिभावको से आपत्ति पत्र लिखवा कर प्रिन्सिपल का विरोध करने का फैसला लेती हुई स्कूल से घर लौटीं। मेरे से बात करती हुई उस पडौसी छात्रा ने फिर मेरे से पूछा कि क्या मैं भी अपने पापा से विरोध पत्र लिखवा कर ले जाऊँ ? अब मैं जबरदस्त परेशानी मे था कि यदि हाँ करता हूँ तो विद्यार्थी के दिमाग में बगावत करने को प्रेरित करने का दोषी बनता हूँ और ना करता हूँ तो छात्रा के पीडा भरे आक्रोश के विरुद्ध प्रिन्सिपल का पक्ष लेने में टाट पर रेशम का पैबन्द लगाने का दोषी बनता हूँ जबकि मूलत मैं स्वय यह उचित नहीं मानता कि आठ पीरियड तक लडकियों या लडकों को भी खडा रखने का दण्ड शिक्षा की दृष्टि से कोई सही समाधान था। फिर भी मैंने सकारात्मक रुख अपनाते हुए छात्रा को 'पॉजिटिवेट' करते हुए कहा कि बेटा ! तुम्हारे घर में कभी माता–पिता नाराज होकर कुछ सजा देने के अधिकारी हैं तो क्या हो गया जो अपने प्रिन्सिपल की एक दिन की दी गई सजा को तुम सहन करने को तैयार नहीं हो ? मेरा इतना कहना था कि छात्रा तेज स्वर मे बोली– 'एक दिन का सवाल नहीं है अकिल ! ये प्रिन्सिपल तो रोज जब भी राउण्ड पर निकलते हैं तो

वर्गीकरण तो सीखना ही होगा कि छात्र की सजा पात्रता अपराध विभाग की श्रेणी की है या शिक्षा विभाग की श्रेणी की है। यदि अपराध विभाग श्रेणी की है तो उम्र के आधार पर उसे बाल–अपराध विभाग को सौंपा जावे क्योंकि शाला को हमे शाला बनाये रखना है शिक्षा को हमें शिक्षा की शालीनता से बाहर नहीं जाने देना है और शाला को हमें थाना और 'जेल' नहीं बनाना है। आज तक कोई बँधा–बँधाया फॉर्मुला (दण्ड प्रक्रिया का) शाला और शिक्षण क्षेत्र में पेश नहीं किया जा सका न किया जा सकेगा क्योंकि छात्र की समस्याएँ मानव मन की उन उन गहराइयों से जुड़ी हुई समस्याए हैं जो देश काल परिस्थितियों से प्रभावित होती हुई नित नये आयामों के साथ शालाओं में दिखाई देती हैं। अत छात्र छात्राओं की शिकायतों के हजारों नित नये नमूनों की सजाए केवल एक डडे से तथा थप्पड़ मुक्कों से अदा नहीं की जा सकतीं। बहुत जबरदस्त धैर्य सहनशक्ति विवेक दूरदर्शिता दार्शनिकता सूझ बूझ और व्यवहार कुशलता की आशा-अपेक्षा रखी जा रही है एक शिक्षक के नाम के व्यक्तित्व से। क्या ऐसा व्यक्तित्व हमारा समाज शिक्षा के क्षेत्र को प्रदान कर सका ? बाल मनोविज्ञान समूह मनोविज्ञान अपराध मनोविज्ञान शरीर व मन की ग्रन्थियों का तन्त्रिका विज्ञान आदि कितना बारीक चिन्तन–मनन और विश्लेषण एक शिक्षक कहलाने वाले व्यक्ति में विकसित होना चाहिये ? किन्तु हम तो रगरूटों के हाथों में मानव चरित्र व स्वभाव के निर्माण का दुस्तर कार्य सभला कर निश्चित हो चुके हैं। जो स्वय कुठाग्रस्त हैं जो स्वय अपने दिमागी बन्धनों से मुक्त नहीं होना चाहते वे ' सा विद्या या विमुक्तये को कैसे समझेंगे ?

अत मैं भी दण्ड प्रक्रिया मे कोई फॉर्मूला पेश करने का दावा नहीं करता किन्तु समय–समय पर जो प्रयोग मैंने किये उनका उल्लेख मात्र कर सकता हूँ। शिक्षा में दण्ड प्रक्रिया एक गहन विषय है जिस पर समय–समय के अनुसार प्रयोग होते रहने चाहिए और नये–नये उपाय आते रहने चाहिये। इसमे पूर्ण विराम कहीं नहीं लग सकेगा। हाँ यह बात अन्तिम व निर्विवाद रूप से कही जा सकती है कि शिक्षक अपने ज्ञान तर्क अपने शालीन व्यवहार की छवि और कुशलता से शिक्षण मे दण्ड की जगह आँख की शर्म को जगा सके तो बहुत अच्छा रहे।

□□

मामूली–मामूली बातो पर आठवें पीरियड तक खडे रहने की सजाएँ कई कक्षाओं में देते हुए जाते हैं। हम लोग दु खी हो चुके हैं। मैं एकदम चुप। सोच रहा था कि प्रिन्सिपल की यह आदतन समस्या है कि बिना सोचे विचारे तकियाकलाम की तरह आठ पीरियड तक खडा रखने की सजा उनके श्रीमुख से गोमुखी गगा की तरह बहती रहती है। ऐसी आदतन बीमारी का समर्थन करना छात्रा की अनास्था को निमन्त्रित करना कहलाएगा। मैं फिर भी अपने मुँह से कोई टिप्पणी नहीं करना चाहता था। अत यह कहते हुए मैंने बात को मोड दिया कि देखो कल तक एक बार तुम रुको और देखो कि कितनी लडकियाँ विरोध पत्र लाती हैं उसके बाद हम तुम्हारे पापा से बात करेंगे।

छात्रा तो किसी तरह शान्त हो गई लेकिन शिक्षा में दण्ड नीति की समस्या शान्त नहीं हुई। मैंने ये चार मात्र उदाहरण इसलिए लिखे हैं जिससे कि हम यह गहराई से सोचें कि दण्ड नीति के धनी अध्यापकों द्वारा दण्ड दे चुकने के बाद छात्र छात्राओं पर होने वाली प्रतिक्रियाओं को गम्भीरता से ध्यान न देकर नजरअन्दाज कर देना क्या शिक्षा के मूल्यों के प्रति न्याय कर सकेगा ?

एक तेज और तीखे दण्ड की अनिवार्य आवश्यकता प्रमाणित करने वाला एक अनुभव भी विचारने और समझने लायक है। एक बहुत ही मानी हुई इग्लिश मीडियम की स्कूल का पहली कक्षा का एक बच्चा प्राय कक्षा मे अन्य बच्चो के रबर–पेन्सिल चुरा लिया करता था। अध्यापिकाओ द्वारा डाँटने–धमकाने पर कान पकड कर सौगन्धें खाया करता था नाटकीय ढग से कहा करता था कि अब कभी चोरी नहीं करूँगा। अध्यापिकाएँ उससे बहुत परेशान थीं। अत उनका विचार था कि ऐसी स्थिति में बच्चे को कोई तेज और तीखी सजा देनी ही चाहिये। अत इनचार्ज अध्यापिका और स्पेशल स्कूलों में अनुभव प्राप्त एक विशिष्ट अध्यापिका दोनो ही शिशु विभाग की जिम्मेदार अध्यापिकाएँ थीं– उन दोनो ने उस बच्चे को कक्षा मे सबके सामने नगा कर दिया। दूसरे दिन अभिभावक का उलाहना भरा टेलिफोन आया। नगा किया जाता है– यह शोभा नहीं देता। अभिभावक बहुत रोष मे बोल रहे थे। उचित कदम उठाने और दोबारा ऐसी शिकायत नहीं आने दी जाएगी–इसका आश्वासन देने पर अभिभावक को तो अपने व्यक्तिगत व्यवहार से मैंने शान्त किया। फिर पूरी पूछताछ करके भविष्य मे ऐसी सजा कभी नहीं दी जावे–ऐसी हिदायत देकर मैंने इस प्रसग को एक बार के लिए तो बन्द कर दिया किंतु मेरा चिन्तन बन्द नहीं हो सका। मैं यही सोच–सोच कर परेशान हो रहा था कि बीसवीं सदी के अन्त तक भी हमारे देश का शिक्षक तेज और तीखी सजा की जरूरत महसूस करता हुआ बच्चे को नगा करने की सजा मे विश्वास करने को तैयार है तब शिक्षा और शिक्षण में दण्ड व्यवस्था पर सही सोच कब हमारे देश का शिक्षक सोचेगा ?

इन सब तरह के दण्ड विधानों पर मेरा चिन्तन सदैव चलता रहा है। मैं धीरे–धीरे इस निष्कर्ष तक पहुँच गया कि शिक्षण में हमें दण्ड के तौर–तरीको पर विचार करना है उससे पहले हम शिकायत कसूर भूल गलती अपराध आदि का वर्गीकरण बहुत सोच–समझ कर करें तथा यह भी तय करें कि आयु–वर्ग की दृष्टि से किसी बच्चे की हरकत किस सीमा तक परिपक्व हो चुकी है ? हमें शिक्षण की प्रक्रिया के दौरान एक

वर्गीकरण तो सीखना ही होगा कि छात्र की सजा पात्रता 'अपराध विभाग' की श्रेणी की है या 'शिक्षा विभाग' की श्रेणी की है। यदि अपराध विभाग श्रेणी की है तो उम्र के आधार पर उसे बाल-अपराध विभाग को सौंपा जावे क्योंकि शाला को हमे शाला बनाये रखना है शिक्षा को हमें शिक्षा की शालीनता से बाहर नहीं जाने देना है और शाला को हमें 'थाना' और 'जेल' नहीं बनानी है। आज तक कोई बँधा-बँधाया फॉर्मुला (दण्ड प्रक्रिया का) शाला और शिक्षण क्षेत्र में पेश नहीं किया जा सका न किया जा सकेगा क्योंकि छात्र की समस्याएँ मानव मन की उन उन गहराइयों से जुडी हुई समस्याए हैं जो देश काल परिस्थितियों से प्रभावित होती हुई नित नये आयामों के साथ शालाओं में दिखाई देती हैं। अत छात्र छात्राओं की शिकायतों के हजारों नित नये नमूनों की सजाए केवल एक डडे से तथा थप्पड़ मुक्कों से अदा नहीं की जा सकतीं। बहुत जबरदस्त धैर्य सहनशक्ति विवेक दूरदर्शिता दार्शनिकता सूझ बूझ और व्यवहार कुशलता की आशा-अपेक्षा रखी जा रही है एक शिक्षक के नाम के व्यक्तित्व से। क्या ऐसा व्यक्तित्व हमारा समाज शिक्षा के क्षेत्र को प्रदान कर सका ? बाल मनोविज्ञान समूह मनोविज्ञान अपराध मनोविज्ञान शरीर व मन की ग्रन्थियों का तन्त्रिका विज्ञान आदि कितना बारीक चिन्तन-मनन और विश्लेषण एक शिक्षक कहलाने वाले व्यक्ति में विकसित होना चाहिये ? किन्तु हम तो रगरूटों के हाथों में मानव चरित्र व स्वभाव के निर्माण का दुस्तर कार्य सभला कर निश्चिंत हो चुके हैं ! जो स्वय कुठाग्रस्त हैं जो स्वय अपने दिमागी बन्धनों से मुक्त नहीं होना चाहते वे सा विद्या या विमुक्तये को कैसे समझेंगे ?

अत मैं भी दण्ड प्रक्रिया में कोई फॉर्मूला पेश करने का दावा नहीं करता किन्तु समय-समय पर जो प्रयोग मैंने किये उनका उल्लेख मात्र कर सकता हूँ। शिक्षा में दण्ड प्रक्रिया एक गहन विषय है जिस पर समय-समय के अनुसार प्रयोग होते रहने चाहिए और नये-नये उपाय आते रहने चाहिये। इसमें पूर्ण विराम कहीं नहीं लग सकेगा। हाँ यह बात अन्तिम व निर्विवाद रूप से कही जा सकती है कि शिक्षक अपने ज्ञान तर्क अपने शालीन व्यवहार की छवि और कुशलता से शिक्षण में दण्ड की जगह आँख की शर्म को जगा सके तो बहुत अच्छा रहे।

□□

4 दण्ड की जगह ध्यान और योग के प्रयोग

दण्ड की जगह ध्यान और योग के शब्दो का जबरदस्त आकर्षण इन पिछले कुछ वर्षों से शिक्षण मे बढ रहा है। बच्चों पर ध्यान और योग के प्रयोग किये जा रहे हैं प्रेक्षाध्यान के अन्तर्गत कायोत्सर्ग तथा अनुप्रेक्षा के प्रयोग बच्चो पर किये जा रहे हैं किन्तु यह काम इतना हल्का और सरल नहीं है जितना सरल समझा जा रहा है। प्राय छात्र–छात्राओं को अनुप्रेक्षा और कायोत्सर्ग कराने वाले शिक्षक तथा साधु–साध्वी अथवा प्रशिक्षक स्वय इतने पहुँचे हुए स्तर के नहीं होते जो इस गहन जिम्मेदारी को वहन करने के अधिकारी कहला सके। एक्यूप्रेशर के प्रशिक्षको की तरह ध्यान और योग के क्षेत्र मे भी आजकल बाढ आ रही है। जबकि हालात ये हैं कि ध्यान–योग के प्रशिक्षकों का अपना स्वय का आभा मडल (ऑरा) इतना प्रभावी नहीं बन सका तथा उनकी स्वय की ऊर्जा इतनी शक्तिशाली नहीं बन सकी जो छात्र–छात्राओं के चेतन–अवचेतन मन को तरगित स्फुरित व ऊर्जान्वित कर सके। जब तक प्रशिक्षक का स्वय का आभामण्डल तेजोमय नहीं होगा तब तक अनुप्रेक्षा व कायोत्सर्ग केवल शाब्दिक एव आगिक धरातल तक रह जाएगे। बच्चों एव किशोरों की ग्रहण शक्ति तरगित होने की शक्ति (रिसेप्टिविटी) को विकसित करने के लिए प्रशिक्षक की आवाज गले का कम्पन आँखों से पोरवों से प्राण शक्ति का प्रसारण इत्यादि सब का एक सधा हुआ ज्ञान अनुभव तथा अन्त करण की आग का होना बहुत जरूरी है जिसके साथ साथ सेक्स का सयम भी महत्त्वपूर्ण है। ऐसे निष्णात प्रशिक्षकों के अभाव में मेरी राय है कि ध्यानस्थ करके अनुप्रेक्षा व कायोत्सर्ग के बजाय सजग सचेत स्थिति में भी यदि तर्कयुक्त शैली शब्दावली द्वारा अनुप्रेक्षा दी जावे तो बेहतर होगा। कृष्ण ने अर्जुन पर सजग अनुप्रेक्षा द्वारा हिप्नोटिज्म का प्रयोग किया था इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता। हम हमारे शिक्षण में उसका छोटा स्वरूप प्रयोग करके देखें। किन्तु मत भूलना कि ध्यान योग का प्रयोग करने वाले व्यक्ति का स्वय का मन व चरित्र उज्ज्वल होना चाहिये।

इन्हीं सब चिन्तनधाराओं के तहत मेरा प्रार्थना–परेड का प्रयोग तथा मैसेज प्रेयर (Message Prayer) का प्रयोग सन् 1958 59 में कक्षा 3 के बच्चों में ओम् के जाप के प्रयोग से शुरू होकर विकसित होता गया। प्रार्थना परेड में सजग अनुप्रेक्षा देने की विधि सन् 1980–81 में अच्छे प्रभावी ढग से मैंने प्रयोग करके देखी। सन् 1993–94 में 'सेवा चार

5 दण्ड के तौर पर मेरे प्रयोग . चार झलकिया

एक अविस्मरणीय घटना राष्ट्र उन्नति विद्यालय न । लालगढ की इस सिलसिले में उल्लेखनीय है। श्रीराम सेवक यादव जो उस समय वहाँ वाणिज्य के वरिष्ठ अध्यापक थे और कक्षा XI के कक्षाध्यापक भी थे। बाद में तो वे बी के विद्यालय में चले गये थे। उन दिनों XI सीनियर कक्षा होती थी क्योंकि 10+2 शुरू नहीं हुआ था। एक दिन वाणिज्य कक्षा म एक सिक्ख छात्र (जो सबसे लम्बा तथा उम्र में भी बडा और दबग था) अपनी कक्षा का होमवर्क भी नहीं कर रहा था और कक्षा में भी हलचल करके कक्षा को भी परेशान कर रहा था। रामसेवकजी ने उसे डॉट कर मेरे दफ्तर में भेज दिया। वहाँ पहले से ही तीन-चार मामले लाइन मे खडे थे। उन्हे निबटाकर मैंने 'पोज' बनाते हुए कुछ तेज व गहरी नजरो से XI के छात्र को घूर कर देखा। फिर तनिक व्यग्यात्मक गले से मैं बोला– 'हूँ तो आप भी दफ्तर मे चले आये ! दफ्तर में आपको भेजना पडा–ऐसी नौबत ही क्यों आई ? फिर तनिक झिडकती हुई मुद्रा में मैंने केवल इतना ही कहा कि जाओ क्लास मे ! जा.. ओ .. ! छात्र कक्षा मे चला गया। लेकिन आश्चर्य ! वह कक्षा में जाकर रोने लगा। रामसेवकजी ने पूछा– 'क्यो रोता है रे ? योगीजी ने मारा था क्या ? छात्र रोते-रोते रुँधे गले से ही बोला– 'मार लेते तो अच्छा था । रामसेवकजी ने पीरियड समाप्त होने के बाद दफ्तर में मुझे यह बात बताई तो कुछ क्षणों के लिए मैं खोया-खोया सा निहारता रहा। फिर नजरो ही नजरों मे हम दोनो मुस्कुराये। नजरो की उस मुस्कुराहट मे छिपा हुआ था– दण्ड प्रक्रिया में थप्पड–मुक्के और डडों की जगह आँख की शर्म का एहसास।

अब मैं कुछ ऐसी सजाओं का वर्णन कर रहा हूँ जिनका आविष्कार (मैं आविष्कार ही कहूँगा) समय-समय पर मैंने किया और उन सजाओ के एलान मात्र से समस्या का समाधान हो गया। मजे की बात यह है कि ये सजाएँ मुझे केवल दिखानी पडीं किन्तु देनी नहीं पडी। मैंने अपने सहयोगी अध्यापक–अध्यापिकाओ को विशेष एव सख्त हिदायत दे दी थी कि भूलकर भी कभी कोई मेरी अनुपस्थिति मे भी सचमुच इन सजाओ को दे मत देना वरना इनका महत्व ही समाप्त हो जायेगा। यदि कभी सयोग से छात्र–छात्रा जिद पर अड जाय या क्षमा नहीं माँगे या दोबारा गलती नहीं करने का विश्वास नहीं दिलाये तो प्रेस्टिज पॉइन्ट मत बनाना बल्कि आपस में मिलकर नाटकीय ढग से एक शिक्षक सजा का ऐलान करे तो दूसरा माफ करने का प्रस्ताव रख दे और दुबारा गलती नहीं करने

पडी और मने साथी अध्यापको के बीच अपनी सातवीं कक्षा की परेशानी प्रकट की। तुरन्त एक ही स्वर में सलाह मिली कि 'जमाओ डडे कस–कसकर ! लातो के देवता बातो से नहीं मानते। मे सब सुनकर चुप रहा और सोचता रहा। उस समय श्री शिवचरणलालजी कश्यप प्रधानाध्यापक थे। दो–तीन दिन बाद मेरे दिमाग में एक बात उठी। स्कूल में पीछे की तरफ निर्माण कार्य चल रहा था। वहाँ से एक ढोल (बडा ड्रम) दो–तीन दिनो के लिए मैंने कश्यप साहब से आज्ञा लेकर कक्षाओं के बरामदों के एक कोने मे रखवा दिया। फिर सातवीं कक्षा मे मैंने एलान किया कि कूडा–करकट (कचरा) डालने के लिए एक बडा ड्रम मैंने इधर कोने मे रखवाया है। आते–जाते कागज का कचरा पेन्सिल की छीलन तथा थूकने व नाक सिनकने के लिए इस ड्रम का प्रयोग किया जाएगा। एक बात और सुन लीजिये समझ लीजिये कि जो छात्र पढाई का काम नहीं करते वे भी 'बेकार' होने के कारण कचरादान मे डाले जाएगे। मैं अपने विज्ञान के पीरियड मे बारी–बारी से रोज एक छात्र उसमे डाल कर पूरे पीरियड खडा रखूगा तब तक स्कूल के अन्य छात्र भी उसमें जो कचरा डालेगे वह उनके सिर पर डालेगे वह उनके सिर पर पडेगा। हो सकता है कि कोई थूक भी दे या नाक भी सिनक दे क्योकि वह तो कचरादान ही तो है।

अब नाटक पूरा करने के लिए दो–तीन दिन तक बराबर ऐलान करने के बाद एक लडके को मैंने लक्ष्य बनाया। उसका काम सबसे कम था। दो मॉनीटरों को कहकर उसे पकड कर ड्रम के पास ले जाया गया। छात्र जोर–जोर से चिल्लाने लगा। ड्रम मे घुसने को तैयार ही नहीं हुआ। बार–बार चिल्ला रहा था– अरे म्हनै ढोल में मत नाखौ रे ! हूँ काल पक्कायत याद कर लासूँ रे ! कापी रौ काम इ पूरौ कर लासूँ ! उन दिनों में मारवाडी की स्थानीय भाषा में बोलचाल सामान्य सी बात थी। छात्र रो–रोकर यही कह रहा था कि मैं निश्चित रूप से कॉपी मे काम पूरा कर लूँगा और याद भी कर लाऊँगा पर मुझे ढोल मे (ड्रम मे) मत डालो। सारी स्कूल मे एक बार के लिए हगामा हो गया। अन्य कक्षाओ में इस स्थिति से एक बार के लिए पढाई मे बाधा तो आई क्योंकि कक्षाओं में से छात्रों का ध्यान इस रोने–चिल्लाने की तरफ आकर्षित हो गया। मैंने शीघ्र ही वापस उसे कक्षा में ले जाने के लिए मॉनीटरो को कहा। फिर यह कहते हुए नाटक का पटाक्षेप किया कि देखो आज तो मैं छोड रहा हूँ लेकिन कल किसी को माफ नहीं करूँगा।

अब दो–तीन दिनों में सारी स्कूल के छात्रो के घरों पर चर्चा का विषय बन गया कि योगीजी ने एक ढोल रखवाया है–काम नहीं करने वाले लडकों के लिए ! स्टाफ रूम में भी खूब हँसी–मजाक का विषय बना रहा। लेकिन मेरा प्रयोग मजेदार रहा। उस एक हफ्ते के अन्दर–अन्दर पूरी कक्षा का लिखित कार्य और प्रश्नोत्तर याद करने का काम पूरा हो गया। उस कक्षा के दृश्य को देख–सुन कर मेरी अन्य कक्षाओं में भी काम कम्प्लीट मिला। नवीं–दसवीं के बडे छात्र आते–जाते उस ढोल को देखते और मुस्कुराते हुए कुछ न कुछ बतियाते हुए निकल जाते। ढोल राजा के नाम से यह राजा स्कूल में चर्चा का विषय बन गई और मुझे डडे का प्रयोग नहीं करना पड़ा। किन्तु ध्यान देने की बात है कि ढोल में डाला किसी को भी नहीं। केवल वातावरण बनाया।

(c) सैलून कॉर्नर

इस प्रसग में राष्ट्र उन्नति विद्यालय न । (हायर सैकेण्डरी) में हेयर कटिंग सैलून का प्रयोग भी लाजवाब रहा। प्राय छात्र कटिंग नहीं कराते और सिर पर झबरे बाल बढे हुए शाला की रीति–नीति में स्वीकार नहीं थे अत यह हेयर कटिंग और नाखून कटिंग

भी एक समस्या के रूप में सिर दर्द बन गई। डायरी पर रिमार्क ऐसे छात्रों की अलग लाइन बना कर लज्जित करना डॉंटना–डपटना बडे–बडे बाल पकड कर झकझोरना इत्यादि कई उपाय कक्षाओं के अध्यापक काम में ले चुके थे। अन्त मे समस्या मेरे सामने रखी गई।

मैंने एक दिन प्रार्थना से पहले प्रार्थना स्थल के एक कोने मे एक कुर्सी–काच–तौलिया–कैंची–कघा आदि रखवा दिया। प्रार्थना हो गई। छात्र–छात्राए कक्षाओं में चले गये। पढाई शुरू हो गई। लेकिन खुसर–पुसर चल रही थी। अध्यापक–अध्यापिकाओं ने महसूस किया कि कक्षाओ में कुछ मुस्कुराहट कुछ कानाफूसी चल रही थी। कहीं–कहीं कुछ बच्चों ने अपने अध्यापकों से पूछा भी कि यह सब क्या मामला है ? हालाँकि मन ही मन में सब समझ भी रहे थे। टीचर्स ने एक वाक्य में बलाय टाल दी कि हम क्या जानें ? जाओ हैड सर से पूछ लो। उस दिन तो मात्र इतनी ही हलचल होकर रह गई। चूकि इस स्कूल में अधिक वर्षों तक मेरा सेवा काल रहा था अत सभी छात्र–छात्राए अध्यापक अभिभावक मेरी रीति–नीति और मेरे स्वभाव से बहुत कुछ घुल–मिल गये थे। इसका लाभ मुझे यह मिलता था कि सकेतों मे ही मेरा काम बन जाता था और मुझे परेशानी कम होती थी। करीब–करीब तो छात्र–छात्राए मेरे उस कुर्सी–काच कॉर्नर का अर्थ समझ गये। किन्तु परिणाम मे तेजी देखने को नहीं मिली कि जिसकी मुझे इन्तिजार थी। दो दिन बाद मैंने प्रार्थना परेड म केवल इतना ही एलान किया कि मैंने अपनी स्कूल म यह सैलून कॉर्नर बना दिया है। एक नाई को एक घटे रोज यहाँ नियुक्त कर दिया है।

अब नाई अपनी ड्यूटी पर आने लगेगा। जिन छात्रों की बढे हुए बाल [illegible] हुए नाखून आदि की समस्याएँ हैं जिन्हे घर पर कटिग के लिए फुरसत नहीं मिलती [illegible] सहायता के लिए यह सैलून कॉर्नर बनाया गया है। बस इतना एलान [illegible] दफ्तर में चला आया। शाला का दैनिक क्रम चलता रहा। [illegible] असर–प्रतिक्रिया को देखता रहा। अध्यापकों–अध्यापिकाओं से रिपोर्ट [illegible] मिली कि कई छात्रों ने तो बाल ठीक करा लिये और छात्राओं [illegible] को भारी मन से त्यागते हुए अपने–अपने नाखून काटने शुरू कर दिए। [illegible] मुझे धीमी लगी। तीन–चार दिन बाद वास्तव में पडौस [illegible] के लिए वहाँ बैठा दिया। बस ! अब तो जैसे साँप सूँघ [illegible] हुए बाल और नाखून की कोई समस्या ही शाला में नहीं [illegible] परिणाम की सफलता पर आश्चर्य कर रहे थे। फिर [illegible] होने की रिपोर्ट मुझे दे दी तब एक दिन प्रार्थना [illegible] छात्र–छात्राओं [illegible] धन्यवाद दिया तथा "Outfit की शालीनता [illegible] सबके विचारों को स्पष्ट किया। शाला में [illegible] आया।

(d) गन्दा बच्चा गन्दा कपड़ा

अब अन्त में ताजा प्रयोग का [illegible] दण्ड की जरूरत समझने वालों [illegible] समझा था (जिसका वर्णन [illegible] अनुशासनहीनता की शिकायतें [illegible]

'माइन्ड मेकिग' की प्रक्रिया आरम्भ करके परिणाम देखने लगा। जब शाला का तौर–तरीका मेरे अनुसार जम गया तब एक दिन फुरसत निकालकर मैं बाजार में उस फुटपाथ पर गया जहाँ पुराने कपडे बेचने वाले बैठे रहते हैं। उनसे मैं तीन पोशाकें खरीद कर लाया। एक पेंट–बुशर्ट जो बडा लडका–लडकी पहन सके। एक सलवार–कुरती और एक सलवट भरा कमीज व हाफपेंट छोटे बच्चों के साइज का। दूसरे दिन प्रार्थना सभा में उन तीनो पोशाको को फैला–फैला कर सब बच्चों के सामने प्रदर्शन कर दिया। यह एलान कर दिया कि जो लडका पढाई पर ध्यान नहीं देगा काम नहीं करेगा अनुशासन भग करेगा मार–पीट हल्ला–गुल्ला गाली–गलौज उठा–पटक आदि शिकायतों से परेशान करेगा उस लडके को यह सलवार–चुन्नी- कुरती उसके पेंट–शर्ट के ऊपर पहिना दी जाएगी और उसी हालत में उसे बस में बैठा कर घर भेजा जाएगा। जो लडकी ऐसी शिकायतें लाएगी उसे यह पेंट–शर्ट उसके (युनिफॉर्म) कपडों के ऊपर पहिना दी जाएगी और घर भेज देगे। छोटे बच्चों को चाहे लडका हो या लडकी–यह हाफपेंट शर्ट उसके युनिफॉर्म के ऊपर पहना कर घर भेज देगे। उधर अध्यापकों को सचेत कर दिया कि पहिनाने का ड्रामा हर बार करना है किन्तु पहिनाना नहीं है। दो–तीन दिन लगातार सवेरे प्रार्थना सभा में यह प्रदर्शन कर दिया गया। मेरा प्रयोग सफल रहा। परेशान कर देने वाली शिकायतो की सख्या आश्चर्यजनक रूप से घट गई। शिकायतों को निमेटने मे मेरा समय जो बरबाद होता था वह बच गया।

इस सजा को एलान करने के साथ–साथ छात्र–छात्राओं को सरल और सहज तर्क से भी मानसिक रूप से जोड़ा गया। इसे 'माइण्ड मेकिग' की प्रक्रिया कहते हैं। कुछ सरल और सहज तर्क होते हैं जिन्हें बच्चे बहुत आसानी से ग्रहण कर लेते हैं। उन तर्कों को वे अन्तर्मन से अस्वीकार नहीं कर पाते अत ऐसे तर्क उन्हें अपनी मानसिकता बदलने के लिए विवश कर देते हैं। डण्डे की मार उपदेश की भाषा ऑर्डर पालन के निर्देश आदि सब भले ही उनकी मानसिकता को नहीं बदल सकें लेकिन ये सहज व सरल और स्वाभाविक तर्क (रीजनिग) बच्चों के दिल दिमाग में गहरी पकड कर लेती है। 'सेवा और चार दिन का मेवा' प्रयोग में इसी तर्क युक्त भाषा–शैली मे माइण्ड मेकिग की सफलता मिली थी।

जब युनिफॉर्म के ऊपर पुराने कपडे पहिनाने की सजा एलान की जा रही थी तब 'सजा' शब्द को बच्चो के दिमाग में नहीं बैठाया गया था बल्कि यह कह कर उनका दिमाग घुमाया गया था कि हम सजा नहीं दे रहे हैं बल्कि हम तो गन्दे से गन्दे का और अच्छे से अच्छे का मिलान कर रहे हैं। न्यू टाइप प्रश्ना में छोटे से छोटा बच्चा भी कक्षा में जानता है कि उपयुक्त प्रश्न के मेल का उत्तर उसके सामने मिला कर रखा जाता है। अत मैंने बच्चो के दिमाग मे यह बहुत गम्भीरता से बैठाया कि अच्छा भोजन अच्छा कपडा अच्छी स्कूल अच्छी चीजे अच्छे बच्चों के मेल की होती हैं और जो बच्चा गन्दा कहलाने लायक है यानि पढाई का काम नहीं करता तो अच्छा नहीं कहा जा सकता लडाई–झगडा करता है तो गन्दा ही कहा जाएगा। तब गन्दे बच्चे का मेल गन्दे कपडे से मिलता है। अत गन्दे बच्चे को गन्दी ड्रैस का मेल स्वाभाविक लगता है। बस इसीलिए गन्दे लडकों को गन्दी सलवार–कुरती पहनाएगे और गन्दी लडकियों को गन्दा पेंट–शर्ट पहनाएगे। गन्दा कहलाने वालों को बढिया पहनने का अधिकार नहीं है। यह सीधा–सरल और सहज तर्क ऐसी गहराई से बच्चों के दिल–दिमाग में बैठ गया और गले उतर गया

कि उपदेश की भाषा आर्डर पालन की भाषा दण्ड की भाषा उस तर्क की भाषा के सामने मुझे अनावश्यक महसूस हुई।

अन्त में फिर मैं यह बात दोहरा देना चाहता हूँ कि—

1 शिक्षा में दण्ड प्रक्रिया एक गहन विषय है जिसमें समय–समय के अनुसार प्रयोग होते रहने चाहिये इसमें पूर्ण विराम कहीं नहीं लग सकेगा।

2 प्रार्थना सभा में उपदेशात्मक भाषा तथा पौराणिक कथाओं की शैली के बजाय शालीन व मर्यादित तरीके से तर्क देकर वर्तमान दैनिक जीवन से घर परिवार से शाला की ही दैनिक घटनाओं में से--उदाहरण प्रत्यक्ष प्रस्तुत करके शिक्षक अपने ज्ञान तर्क और शालीन व्यवहार की छबि से दण्ड की जगह आँख की शर्म और सम्बन्धों के लिहाज को जगा सकें तो बहुत अच्छा रहे।

3 आपराधिक वृत्ति के बच्चों के लिए समाज और सरकार को नये सिरे से सोचना ही होगा। आपराधिक वृत्ति के बच्चों को सुधारने के लिए सामान्य शाला में अध्यापक व प्रधानाध्यापक का समय व शक्ति कितनी बरबाद होती है तथा ऐसे कुछ बच्चों की हरकतों के कारण अन्य अनेक बच्चों को कितना सहन करना पडता है उस सब दृष्टि से आपराधिक बच्चों का समाधान अलग से विचारणीय है जिसे मैं इस पुस्तक का विषय नहीं बना रहा हूँ।

किन्तु आपराधिक वृत्ति का उदाहरण देकर यदि दण्ड प्रक्रिया का पुरातन स्वरूप शालाओं में आज भी थोपा जाता रहे और डण्डे के प्रति अपनी आस्था को शिक्षक दोहराता रहे तो मेरी दृष्टि में इससे बढकर शिक्षाजगत् की अन्य कोई विडम्बना नहीं होगी।

स्पष्टीकरण

दण्ड के बिन्दु (टॉपिक) पर उपर्युक्त चार झलकियाँ मेरे प्रयोगों के नमूनों के तौर पर तथा इस सम्बन्ध में मेरी बुनियादी अवधारणा को स्पष्ट करने के तौर पर मैंने लिखी हैं। अधिक उदाहरण दे कर पुस्तक का कलेवर निरर्थक रूप से बढाना आवश्यक नहीं है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि केवल इतने ही प्रयोग हुए बल्कि हकीकत तो यह है कि विद्यालय प्रशासन व सचालन में शिशु से लेकर सीनियर सैकेण्डरी तक किशोरवय अथवा टीन एजर्स के छात्र छात्राओं के अनुशासन को बनाये रखने के लिए कदम कदम पर नित नये रूप में समस्याए आती रही हैं जिनका समाधान मैंने सदैव अपनी इसी तरह की माइन्ड मेकिग वाली शैली शब्दावली द्वारा किया जिसमें मुझे उत्साहवर्धक सफलता मिली। छोटी–छोटी शिकायतों से लेकर बडी स्तर की समस्याए भी मैंने इसी तरह सुलझाई हैं। ऐसे कुछ प्रयोग 'माइन्ड मेकिग' की दृष्टि से जो मैंने किये उनका कुछ उल्लेख मेरी पुस्तक 'बच्चे छोटे बात बडी के दो भागों मे भी मैंने प्रस्तुत कर दिया है। माइण्ड मेकिग और सजग प्रेक्षा तथा शाला के Emotinonal chanallisation को शिक्षण में दण्ड प्रक्रिया का विकल्प बनाया जाना चाहिये।

□□

Unit-III

शाला में पर्वोत्सव (शिक्षक केन्द्रित प्रयोग)

शाला मे पर्वोत्सव (शिक्षक केन्द्रित प्रयोग)

शिक्षण जगत् में शालाओं में हर शनिवार को बाल–सभा की परम्परा बहुत पुरानी और सर्वविदित एव सुपरिचित है। अभी पिछले कुछ वर्षो से बाल–सभा की नियमित परम्परा को कई सचालकों तथा कई प्रधानाध्यापकों ने अपनी दृष्टि में महत्वहीन मान कर समाप्त कर दिया किन्तु अनेक शालाओं की एक अनिवार्य गतिविधि के रूप मे यह बाल–सभा परम्परा आज भी चल रही है। बाल–सभाओ का मूल लक्ष्य तो आज भी यही है कि विद्यार्थियों में यह क्षमता जागे कि वे सबके सामने मच पर निडरता से अपनी कुछ भी विशेषता प्रकट कर सकें। कविता कहानी नाटक नृत्य भाषण आदि किसी भी माध्यम से मच पर वे अपने को प्रस्तुत कर सके अभिव्यक्त कर सकें। मुझे इन क्षणो मे अपने बचपन की बाल–सभाए याद आ रही हैं। हर शनिवार से दो दिन पहले किसी एक विषय की घोषणा कर दी जाती थी। बाल सभा मॉनीटर प्रधानाध्यापक की सलाह से विषय (टॉपिक) की सूचना प्रसारित करता था। फिर शनिवार को पहले दूसरे पीरियड में ही सब कक्षाओं में से बोलने वालों के नाम लिखवा दिये जाते थे। मैं हर शनिवार की बाल सभा में अवश्य नाम लिखवा कर बोला करता था।

पिछले करीब पच्चीस–वर्षो से राजस्थान के शिक्षा विभाग की एक मासिक पत्रिका 'शिविरा' नाम से छपती है जिसमें हर वर्ष का शिविरा कैलण्डर छपता है। उस कैलण्डर म सालभर आने वाले पर्व–उत्सव तारीख–महीने वार पहले से ही छप कर शालओं में पहुँच जाते हैं। अत आजकल शनिवार की बाल सभाओं का पहले से भी बढिया और बडा रूप शालाओं मे चल रहा है– पर्वोत्सवों के रूप में।

लेकिन एक बात जो मुझे बचपन मे भी महसूस होती थी और मेरे अध्यापकीय जीवन में भी आज तक महसूस होती रही है कि अधिक से अधिक छात्र–छात्राओं को शालाओ में पर्वोत्सवों मे मच पर आने के लिए न तो अवसर मिलता है न वे स्वय मच पर आते हैं और न उन्हें प्रेरित किया जाता है। केवल एक सूचना जारी कर दी जाती हैं इसके साथ साथ एक बात यह भी जबर्दस्त महसूस होती रही है कि किसी भी शाला के अध्यापक–अध्यापिकाओं में से एक–दो को छोडकर बाकी कोई भी अध्यापक–अध्यापिका मच पर आ कर भाषण कविता गायन–वादन या नाटक आदि किसी माध्यम से अपने को प्रस्तुत नहीं करते। माइक पर बोलने में अधिकाश अध्यापक शरमाते हैं झिझकते हैं और बचना चाहते हैं। यहाँ तक कि यदि उन्हें बाध्य नहीं किया जाय तो वे ऐसे आयोजनो

मे एक–दो घंटे बैठने में भी तकलीफ महसूस करते हैं। ऐसे अवसरों में यदि उन्हें छूट मिल जाय तो वे घर चले जाना पसन्द करते हैं अथवा स्टाफ रूम में गप्पें या बहस करना पसन्द करते हैं।

अधिक से अधिक अध्यापक मच पर प्रस्तुत क्यों नहीं होते और माइक पर क्यों झिझकते हैं– यह बात बचपन से ही मेरे दिमाग में प्रश्न बनाये हुए थी। अत अपने अध्यापकीय जीवन में चाहे किसी भी शाला में चाहे अधिकारी के रूप में रहा या अध्यापक के रूप मे रहा किन्तु हर सूरत में अधिक से अधिक अध्यापकों को मच पर प्रस्तुत होने के लिए मैंने सदैव प्रयत्न किया प्रेरित किया और प्रोत्साहित किया। मुझे इसमें कुछ कठिनाइयाँ तो आईं लेकिन आनन्द भी मिला।

इस दिशा में हर वर्ष मैंने कुछ न कुछ प्रयोग अवश्य किये जिनमें से कुछ विशेष सस्मरण प्रस्तुत कर रहा हूँ।

सन् 1959 की बसन्त पञ्चमी का दिन। मैं जैन हाई स्कूल के प्राइमरी सैक्शन मे प्रतिनियुक्त था क्योंकि हाई स्कूल की छठी कक्षा के तीन सैक्शन प्राइमरी की बिल्डिंग मे लगते थे। प्राइमरी विंग सुनारों के मोहल्ले में थी और हाई स्कूल विंग गगाशहर रोड पर मुख्य भवन में थी। श्री शिवचरण लाल कश्यप प्रधानाध्यापक थे जो सह पाठय एव पाठयेतर गतिविधियों (Co-curricular & extra curricular) में भी पूर्ण रुचि लेते थे। बसन्त पचमी के लिए निर्देश मिला था कि प्राइमरी के छात्रों की छुट्टी रखी जावे किन्तु छठी कक्षा के छात्रों को लेकर अध्यापक सभी हाई स्कूल भवन में सबेरे ही पहुँचेंगे। एक दिन पहल यह निर्देश मिला। समय कम था फिर भी मेरा उत्साह प्रबल था। मैंने छात्रो के तो सामूहिक गान आदि दो–तीन आइटम तैयार करा दिये और फिर सब अध्यापको से सम्पर्क किया। यह तय रहा कि सभी अध्यापक चाहे कुछ भी फैन्सी ड्रैस चुनें अपनी–अपनी रुचि के अनुसार किन्तु हर सूरत मे फैंसी ड्रैस होनी जरूरी है। यह भी तय रहा कि पहले मोहल्ले से निकल कर जेल रोड गूजर मोहल्ला तथा गोगागेट होते हुए गगाशहर रोड पर हाई स्कूल विग में पहुँचेंगे। सारे रास्ते पैदल चलते हुए छात्रों के साथ–साथ अपनी–अपनी फैन्सी ड्रैस में पहुचेंगे। मैंने जानबूझकर गूजरनी का घाघरा–ओढना पहिन कर बडासा घूघट निकाल कर दूध का 'गूणिया (चरी) बगल मे दबा कर पैरों मे चाँदी के भारी–भारी कडे पहिन कर अपना फैन्सी स्वरूप बनया। श्री सौभाग्यमल सोनी ने पुलिस इन्सपेक्टर की ड्रैस पहनी। अन्य अध्यापकों ने भी इसी तरह अपनी–अपनी रुचि से मजेदार स्वरूप तैयार किये।

अब उस बसन्त पचमी की रगत देखने लायक थी। तमाम रास्ते हम लोग गाते–बजाते हुए गये। घरो से निकल–निकल कर लोग हमारी टोली को देखने के लिए सडक पर आ गये। स्कूल के छात्र व अध्यापक मिल कर इस तरह बिना झिझक के बसन्त पचमी मनाते हुए आम रास्ते से गुजर रहे थे– यह पहला ही मौका था। जब हाईस्कूल के गेट पर पहुँचे तो वहाँ सब चकित हो गये। किसी को अनुमान नहीं था कि ऐसा दृश्य भी सम्भव होगा। स्वय कश्यप साहब अपने दफ्तर से निकल कर हमारी टोली का दृश्य देखने के लिए बाहर आए और बहुत खुश हुए। मैंने घूघट मे से पहले झाँक कर देखा

फिर एक हाथ से अपनी मूँछों पर हाथ फेरते हुए दूसरे हाथ से झुक कर सलाम किया। अब तो हाई स्कूल के छात्रों–अध्यापकों और कश्यप साहब सहित सब की हँसी के फव्वारे छूट पड़े। उस दिन हाई स्कूल के आयोजन में प्राइमरी की प्रधानता छाई रही। आयोजन समाप्त होने पर सब तो अपने–अपने घर चले गये लेकिन सौभाग्य मलजी को क्या सूझी कि रगत कुछ और ही बनी। हम सबको कुछ न बता कर वे चुपके से अपनी साइकिल ले कर चौपड़ा स्कूल गंगाशहर पहुँच गये। सयोग से वहाँ बसन्त पचमी का आयोजन चल रहा था। सौभाग्यमल अपनी पुलिस इन्सपेक्टर की पोशाक में इतना बढिया फब रहा था कि चौपड़ा स्कूल में प्रवेश करते ही प्रधान अध्यापक ने बडे आदर के साथ स्वागत किया और बैठने का आग्रह किया। पर हमारे इन्सपेक्टर साहब ने बगल मे अफसराना अन्दाज से डडा दबाते हुए सीनातान कर बोलते हुए कहा– (आवाज बनाकर – बदल कर) कि हम बैठेंगे नहीं हम तो यही देखने के लिए राउण्ड पर निकले हैं कि आजकल स्कूलों में बसन्त पचमी पर बहुत कार्यक्रम होने लगे हैं तो कहीं होली का माहौल नहीं बन जायं सौभाग्यमल का इतना कहना था कि प्रधानाध्यापक जी ने 'पुलिस इन्सपेक्टर साहब' को आश्वासन दिया कि 'साब हमारे यहाँ तो बहुत शान्ति से काम चल रहा है।

"All right, All right, Thank you" कहते हुए सौभाग्यमल वापस चले आये। मन नहीं भरा फिर कोटगेट से पब्लिक पार्क की तरफ निकल पडे। कोटगेट के चौराहे पर पुलिस मैन ने बाकायदा सलाम ठोकी। अब उन्हें लगा कि उनकी फैन्सी ड्रैस सार्थक हो गई। पब्लिक पार्क का विचार छोड़कर वे स्टेशन रोड से मुड कर त्यागी वाटिका से होते हुए वापस सुनारों के मोहल्ले में अपने घर पहुँचे। दूसरे दिन जब यह हाल उन्होंने स्कूल में सबको सुनाया तो सबको आश्चर्य के साथ–साथ आनन्द का अधिक अनुभव हुआ।

मैंने इस वर्णन को इतनी प्रधानता इस कारण दी है कि मैं यह स्पष्ट कर सकूँ कि स्कूलों में अध्यापक प्राय अपनी झिझक और निरर्थक सकोच या सुपीरियोरिटी के कारण मच पर नहीं आते पर्वोत्सवों में खुल कर भाग नहीं लेते बल्कि यह सोचते हैं कि छात्रों पर उनका प्रभाव समाप्त हो जाएगा जबकि वस्तुस्थिति यह है कि कार्यक्रमों में भाग लेने से प्रभाव कम नहीं होता। प्रभाव कम होता है जब अध्यापक अपनी वाणी अपने आचार और व्यवहार तथा अपने ज्ञान व शिक्षण विधि में अपना बौनापन दिखलाता है। यदि अध्यापक अपने गहरे ज्ञान और शालीन व्यवहार की मर्यादा बनाये रखे तो कार्यक्रमों में घुलना–मिलना उसके अध्यापकीय जीवन में चार चाँद लगा देगा। मैंने जान बूझ कर गूजरनी की ड्रैस पहिन कर हँसी का माहौल बनाया किन्तु इससे मेरा प्रभाव कम नहीं पडा बल्कि जब तक मैं जैन हाई स्कूल मे रहा तब तक शाला के कार्यक्रमों में मुझे छात्रों और अध्यापकों का साथ–सहयोग इतना मिला इतना मिला कि शायद किसी को मिला हो। अध्यापकों को अधिक से अधिक मच पर सक्रिय किया जाय इस दिशा में यह मेरा सफल प्रयास था जबकि मैं उस स्कूल में उसी वर्ष नियुक्त हुआ ही था।

सन् 1959 के नये सत्र में कक्षा छठी को मुख्य भवन में ले लिया गया था अत मैं भी हाई स्कूल विंग मे बुला लिया गया। यद्यपि मैं मिडिल कक्षाओ का नया–नया

अध्यापक था किन्तु फिर भी स्कूल के सीनियार छात्रों और सीनियर अध्यापकों का इतना प्रेम और सहयोग मुझे मिला कि हर पर्वोत्सव के आयोजन मे जब भी मैंने किसी भी छात्र या अध्यापक से आशा की तो उसकी सक्रिय भागीदारी मुझे मिली। उन दिनों साइन्स ऐंसोसियेशन कॉमर्स ऐंसोसियेशन की गतिविधियाँ जैन हाई स्कूल में बडे जोर–शोर से चलती थी। कश्यप साहब सबको समर्थन देते थे। मैं भूल नहीं सकता जब साइन्स के विभागाध्यक्ष पी एल सूरी स्वय प्रताप की भूमिका के लिए उतर पडे क्योंकि छात्रों में से प्रताप के उपयुक्त पात्र नहीं मिल रहा था। कक्षा दसवीं के छात्र सचदेव ने शक्तिसिह की भूमिका अदा की थी। सन् 1960-61 के समाज सप्ताह में जब मर्चेन्ट ऑफ वेनिस का ड्रामा मच पर खेला गया तब उसमें छात्रों और हम अध्यापकों की सहभागिता देखने लायक थी। उस समय के वरिष्ठ अध्यापक राजानन्द भटनागर छात्रो के बीच 'रिजर्व्ड नेचर' के माने जाते थे लेकिन वही भटनागर साहब इतने खुल कर मच पर आने लगे कि मुझे उनका भरपूर स्नेह साथ और सहयोग मिला। मैंने दो–तीन कार्यक्रमों का उल्लेख मात्र किया है। शिक्षक सहभागिता के तात्विक महत्व को प्रतिपादित करने के लिए पर्याप्त है। वास्तव मे देखा जाय तो जैन हाई स्कूल के चार वर्ष के मेरे सेवाकाल में हर शनिवार हर त्यौहार हर उत्सव हर 15 अगस्त व 26 जनवरी को कुल मिला कर इतने अधिक कार्यक्रम प्रस्तुत किये गये कि सुरुचि शैक्षणिक रुचि सास्कृतिक स्तर पर सही व खरे सास्कृतिक रूचिपूर्ण कार्यक्रमो का वह स्वर्णकाल रहा और उन दिनों हमारे मच की शोभा पूरे बीकानेर में फैली हुई थी। 'देश का पानी नाम का आइटम टाउन हॉल तक अपनी गूँज गुँजा रहा था। इस वर्णन के मूल मे मेरी मूल प्रेरणा पर मैं बल देना चाहता हूँ कि शिक्षण क्षेत्र में शालाओं मे मच पर अधिक से अधिक छात्रों और अध्यापकों की सहभागिता को सक्रिय करने और देखने मे मेरे प्रयोग सदैव चलते रहे।

सन 1976-77 से 1982 83 तक का समय इस प्रयोग की दृष्टि से राष्ट्र उन्नति विद्यालय न 1 मे मेरे अनुभव का एक अलग ही किस्म का समय रहा। उस समय वहाँ स्पेशल मान्तेसोरि कक्षाए भी थीं। इग्लिश मीडियम की विंग अलग खुल चुकी थी। अत विभिन्न प्रकार का छात्र वर्ग तथा विभिन्न स्तर का अध्यापक वर्ग मुझे मिला। शाला का मच एक ऐसा स्थान है जहाँ सब का समन्वय सम्भव है। अध्यापकीय सहभागिता की पूर्णता का दृश्य देखने मे मेरे प्रशासनिक अधिकार का मैंने सदुपयोग लिया। मैंने एक स्थायी आदेश दे कर शाला की रीति–नीति के अन्तर्गत घोषित किया कि शिविरा कैलेण्डर के अनुसार जो–जो पर्वोत्सव मान्य हैं उनके आयोजन पर प्रत्येक अध्यापक–अध्यापिका को उस पर्वोत्सव से सबधित सामग्री सक्षिप्त रूप में लिखकर दो दिन पहले ही मेरे कार्यलय मे प्रस्तुत करनी होगी। मैं उस सामग्री का अवलोकन करूँगा कि कहीं राजनैतिक या धार्मिक दृष्टि से कोई आपत्तिजनक शब्दावली नहीं हो। उसके बाद आयोजन के समय हर अध्यापक को उसका लिखा हुआ 'पेपर दे दिया जाएगा जिसे देखकर मच पर अध्यापक 'पेपर रीडिग' प्रस्तुत करेंगे।

आदेश प्रसारित करने के बाद जो भी आयोजन हुआ उसके पेपर्स आने लगे। आयोजनों में पेपर रीडिग करतें हुए सभी अध्यापक मच और माइक पर बोलने लगे। सब

की झिझक समाप्त हो गई। हर आयोजन के पेपर्स की फाइल बना दी गई । एक इन्चार्ज टीचर इस काम को सयाजित करने लगा। सामग्री जुटाने में मेरा पूरा सहयोग उन्हे मिलता रहा। नवभारत टाइम्स में हर विशेष दिवस पर प्रकाशित सामग्री की कटिंग्स द्वारा एक अच्छा-सा सग्रह तैयार हो गया। धीरे-धीरे कुछ अध्यापक बिना देखे भी मच पर अपने पेपर की सामग्री प्रस्तुत करने लगे। छात्रों पर इसका अच्छा प्रभाव पडा। छोटी-बडी सभी कक्षाओं से छात्र-छात्राओ के नाम प्रस्तावित होने की सख्या बढने लगी। छात्र और अध्यापक विभिन्न पत्र-पत्रिकाओ और जीवनियो की पुस्तकों आदि की प्रतीक्षा व खोज में तत्पर रहने लगे तथा आपस मे विचार-विमर्श करने लगे जिससे कि आयोजन सबधी सामग्री जुटाई जा सके। पुस्तकालय से सबधित पुस्तकों की माँग बढने लगी। कुल मिला कर एक अच्छा वातावरण शैक्षणिक रूचि का तैयार हो गया और मच पर पर्वोत्सवो के आयोजनो मे अध्यापको के मौन की जो शाश्वत समस्या है उस समस्या का प्रत्यक्ष समाधान मैंने पेश किया। अध्यापकों की सहभागिता का प्रयोग जबर्दस्त सफल हुआ। एक भी अध्यापक अध्यापिका मच पर आये बिना नहीं रहा।

इस प्रयोग की सफलता ने अपने कदम आगे बढाये। मैंने प्रेरित और प्रोत्साहित किया कि पन्द्रह अगस्त व छब्बीस जनवरी को विभागवार अध्यापक आइटम पेश करे । परिणाम स्वरूप इन पर्वोत्सवों पर टीचर्स की तरफ से एकल गीत समूह गीत फैन्सी ड्रैस प्रहसन और अन्य कई प्रकार के कार्यक्रम बिना किसी झिझक के मच पर प्रस्तुत होने लगे। इग्लिश मीडियम मॉन्तेसोरि विभाग प्राइमरी विभाग सैकेण्डरी विभाग अपनी-अपनी भूमिकाए अदा करने लगे। नये आने वाले अध्यापक-अध्यापिकाए अपने आप ही शाला के वातावरण में ढलने लगे। मजे की बात तो यह थी कि इस शाला से निकल कर बाद में बी ए ऍम ए बी ऍड आदि करके जो छात्र अध्यापक बन कर इसी शाला मे नियुक्ति पाते वे उसी वातावरण को बिना किसी सकोच के बनाये रखने में अपनी अच्छी भूमिका अदा करते।

अध्यापकों-अध्यापिकाओं की उन्मुक्त निस्सकोच सुपीरियोरिटी-इन्फीरियोरिटी की कुठा से दूर सहज भाव से सक्रिय भागीदारी का वह दृश्य एक जबर्दस्त दृश्य था जब मॉन्तेसोरि कक्षाओं के एम ए बी एड और मॉन्तेसोरि ट्रेण्ड अध्यापक-अध्यापिकाओ ने बच्चों की तनावमुक्त शिक्षण प्रणाली के अन्तर्गत बच्चों के साथ कक्षा मे ही (क्योकि बाहर सम्भव नहीं था जगह की कभी के कारण) बच्चो का घेरा बनवा कर बच्चों के बीच 'अन्धा पकड' का खेल बच्चा बन कर खेलना शुरू कर दिया। एक दिन ऐसे ही खेल मे मुझे भी पकड लाये। दफ्तर का काम छोड कर मुझे खेलना पडा। बच्चे छोटे-छोटे इतने खुश कि पूछो मत। मिडिल और सैकेण्डरी के छात्र-छात्राए अपना आनन्द रोक नहीं सके। देखने के लिए निकल पडे। हैडसर 'अन्धा पकड' खेल रहे हैं। उनके लिए तो एक अजीब दृश्य था। **साधारण तौर पर सैकेण्डरी हायर सैकेण्डरी स्कूलों में हैडमास्टर की कुर्सी पर बैठने वाला व्यक्ति बच्चा बन कर बच्चों के साथ खेले यह छात्र छात्राओं की सहज कल्पना का विषय नहीं।** अत शाला का वातावरण उस समय निराला सा बन गया। वॉलीबॉल क्रिकेट आदि के मैच खेलने में तो हैडमास्टर और अध्यापक भागीदार बनते हैं- यह तो छात्र-छात्राए आश्चर्य नहीं मानते लेकिन शिशु कक्षा के बच्चों

मच पर ऐसी हास्यास्पद बात न बोले जैसी उपर्युक्त पक्तियों में बोली गई।
''क बार विवेकानन्द जयन्ती के आयोजन पर छात्रों ने परम्परा के अनुसार एक
। सभा का अध्यक्ष बनाया। अध्यापकजी अध्यक्ष नहीं होना चाहते थे क्योकि
'भी बोलने में असमर्थ थे। किन्तु, शाला की सहज परम्परा ने विमुख
र सकते थे। अत अध्यक्ष आसन ग्रहण करने से पहले जब तक
. हो रहे थे तब तक वे मेरे दफ्तर में आए और अत्यन्त सकोच
मैं कुछ विचार विवेकानन्द पर बोल सकूँ अत यह स्पष्ट
और दयानन्द में कोई खास फर्क तो नहीं है न। दोनों
.। उन अध्यापक जी के इस भोले प्रश्न का मैं क्या जवाब
कि दो मिनिट में इन्हें विवेकानन्द और दयानन्द का
पर कुछ बोलने लायक कैसे तैयार कर दूँ ? फिर भी
का ही तुरन्त देखकर उनमें जो सामग्री मिले उसे ही
। दे कर मैं मुक्त हुआ। काम तो चल गया किन्तु मैं
बाद की नई पीढियाँ यदि इसी प्रकार की तैयार होती
। और शिक्षक का क्या होगा ? इस देश का नेता यदि
न तो कोई आश्चर्य नहीं। हर साल पाँच सितम्बर
पैसा तो इकटठा कर लिया जाता है लेकिन
. अध्यापक–अध्यापिकाए डॉ राधाकृष्णन् के व्यक्तित्व
त हैं ? या दे रहे हैं ? चाहे विज्ञान और गणित या
। लेकिन हिन्दी और सामाजिक ज्ञान के शिक्षको के
पर सभी को सक्रिय भागीदारी दिखानी चाहिये।
इस दिशा मे आग्रहपूर्वक प्रयोग और प्रयत्न करने पर
है। प्रयत्न करने वाला होना चाहिये।

□□

के साथ आँख मिचौनी अन्धापकड़ जैसे खेल स्कूल में खेले यह आश्चर्य का विषय था। इस आश्चर्य को मेरे प्रयोग ने सहज बना दिया और शाला में शिक्षण में अध्यापक अध्यापिकाओं की सक्रिय सहभागिता का मेरा प्रयोग अपने पूरे रग पर पहुँच गया।

इस प्रकार के प्रयोग सोचने या पढ़ने में आसान लगते हैं किन्तु करने में कई कठिनाइयों से गुजरना पड़ता है। जिनके लिए बहुत धैर्य और वाणी सयम आवश्यक है। दस जनों को साथ लेकर चलना आसान नहीं होता। आसपास की नोक झोंक भी झेलनी पड़ती है। फबतियाँ भी सुननी और सहनी पड़ती हैं। उस समय यदि भडक जाए या बिदक जाए तो प्रयोग चल नहीं सकते। समय और शक्ति देनी पड़ती है। साथी अध्यापक अध्यापिकाओं का मानस निर्माण (Mind Making) करना पडता है। सबसे ऊपर एक प्रश्न है कि यह सब करने पर दुनियाँ और परिवार में पूछा जाता है कि क्या मिला ? इसका उत्तर शून्य में रखना पड़ता है।

"Job satisfaction" मिला-- इस बात को स्वान्त सुखाय की सीमा में कैद रखना पडता है।

खैर सन् 1984 से 1988 तक के SUPW के शिविरों के दौर में शिक्षण क्षेत्र में शिक्षकों की सहभागिता की सक्रियता का दौर छात्र--छात्राओं की गजब की सहभागिता के मिश्रण से कितनी सीमा तक परवान पर चढ सकता है– यह अनुभव भी मेरे प्रयोग का एक अविस्मरणीय अग बन गया।

यदि शिविरा कैलण्डर के अनुसार पूरे वर्ष भर विभिन्न पर्वोत्सवों पर पूर्व तैयारी के साथ पेपर रीडिग प्रत्येक अध्यापक प्रस्तुत करने का मानस बना ले तो शिक्षा जगत् में शालाओं मे अध्यापक केवल विषय अध्यापन के भाषण तक सीमित नहीं रहेगा बल्कि विभिन्न अवसरोंपर विभिन्न विषयों पर नई पीढी को अपना ज्ञान दे सकेगा इस निमित्त से शिक्षक अनेक पर्वोत्सवों से सम्बन्धित व्यक्तियों की जीवनियों व उनके कार्यकलापों का ज्ञान लाभ कर सकेगा तथा पर्वोत्सवों की सामाजिक--ऐतिहासिक व धार्मिक भूमिकाओं से भी अपने आपको जोडे रख सकेगा। नई पीढी में इस प्रकार के खुले ज्ञान की कमी का परिणाम कितना हास्यास्पद होता है– इसका अनुमान राष्ट्रीय स्तर पर प्रत्यक्ष मिलता है--

'हम सावरकर और मुखर्जी को नहीं पहचानते —यादव। इन्दौर 21 सितम्बर (वार्ता)। केन्द्रीय खनिज राज्यमत्री बलराम सिह यादव का कहना है कि वीर सावरकर और श्यामाप्रसाद मुखर्जी को नहीं पहचानते और न ही उन्हें यह पता है कि ये लोग कौन हैं।

यादव ने आज यहाँ मध्यप्रदेश कॉंग्रेस (इ) अध्यक्ष दिग्विजय सिह के इस कथन का समर्थन किया कि वीर सावरकर और श्यामाप्रसाद मुखर्जी का स्वतन्त्रता आन्दोलन मे कोई योगदान नहीं रहा है।

राजस्थान पत्रिका में दि 28 सितम्बर 1992 को प्रकाशित यह समाचार हमें यह एहसास कराने के लिए पर्याप्त है कि शिक्षा जगत् में शालाओं में शिक्षण के दायरे में हम पर्वोत्सवों के आयोजनों के निमित्त से पाठ्य पुस्तकों से हटकर खुला ज्ञान भी अर्जित करें और नई पीढी को प्रदान करें जिससे कि भविष्य में राजनैतिक नेता बनने वाला छात्र हमारे

प्रजातन्त्र के मच पर ऐसी हास्यास्पद बात न बोले जैसी उपर्युक्त पक्तियों में बोली गई।

एक बार विवेकानन्द जयन्ती के आयोजन पर छात्रों ने परम्परा के अनुसार एक अध्यापक को सभा का अध्यक्ष बनाया। अध्यापकजी अध्यक्ष नहीं होना चाहते थे क्योकि वे विवेकानन्द पर कुछ भी बोलने में असमर्थ थे। किन्तु, शाला की सहज परम्परा से विमुख हो कर मना भी नहीं कर सकते थे। अत अध्यक्ष आसन ग्रहण करने से पहले जब तक सभा भवन में छात्र व्यवस्थित हो रहे थे तब तक वे मेरे दफ्तर में आए और अत्यन्त सकोच सहित पूछने लगे कि 'सा'ब मैं कुछ विचार विवेकानन्द पर बोल सकूँ अत यह स्पष्ट कर दीजिये मुझे कि विवेकानन्द और दयानन्द में कोई खास फर्क तो नहीं है न। दोनों ही आर्य समाज के सदस्य थे न। उन अध्यापक जी के इस भोले प्रश्न का मैं क्या जवाब देता ? मैं भी कुछ समझ नहीं पाया कि दो मिनिट में इन्हें विवेकानन्द और दयानन्द का बुनियादी अन्तर समझा कर मच पर कुछ बोलने लायक कैसे तैयार कर दूँ ? फिर भी आठवीं–नवीं की पाठयपुस्तकों को ही तुरन्त देखकर उनमें जो सामग्री मिले उसे ही समझ कर काम चलाने का निर्देश दे कर मैं मुक्त हुआ। काम तो चल गया किन्तु मैं सोचता ही रह गया कि आजादी के बाद की नई पीढियाँ यदि इसी प्रकार की तैयार होती रहीं तो इस शिक्षा शाला शिक्षण और शिक्षक का क्या होगा ? इस देश का नेता यदि सावरकर और मुखर्जी को नहीं पहचाने तो कोई आश्चर्य नहीं। हर साल पाँच सितम्बर शिक्षक दिवस को झण्डे बाँट कर पैसा तो इकटठा कर लिया जाता है लेकिन छात्र–छात्राओं को शालाओं में कितने अध्यापक–अध्यापिकाए डॉ राधाकृष्णन् के व्यक्तित्व और कृतित्व पर जानकारी दे सकते हैं ? या दे रहे हैं ? चाहे विज्ञान और गणित या वाणिज्य के ही शिक्षक क्यों न हों लेकिन हिन्दी और सामाजिक ज्ञान के शिक्षको के साथ–साथ शिक्षक होने के नाते पर्वोत्सवों पर सभी को सक्रिय भागीदारी दिखानी चाहिये। मैंने यह स्पष्ट अनुभव लिया है कि इस दिशा मे आग्रहपूर्वक प्रयोग और प्रयत्न करने पर काफी सीमा तक रेसपोन्स मिलता है। प्रयत्न करने वाला होना चाहिये।

□□

के साथ आँख मिचौनी अन्धापकड जैसे खेल स्कूल में खेले यह आश्चर्य का विषय था। इस आश्चर्य को मेरे प्रयोग ने सहज बना दिया और शाला मे शिक्षण में अध्यापक अध्यापिकाओं की सक्रिय सहभागिता का मेरा प्रयोग अपने पूरे रग पर पहुँच गया।

इस प्रकार के प्रयोग सोचने या पढ़ने में आसान लगते हैं किन्तु करने में कई कठिनाइयों से गुजरना पड़ता है। जिनके लिए बहुत धैर्य और वाणी सयम आवश्यक है। दस जनों को साथ लेकर चलना आसान नहीं होता। आसपास की नोक झोंक भी झेलनी पड़ती है। फयतियाँ भी सुननी और सहनी पड़ती हैं। उस समय यदि भड़क जाए या बिदक जाए तो प्रयोग चल नहीं सकते। समय और शक्ति देनी पड़ती है। साथी अध्यापक-अध्यापिकाओं का मानस निर्माण (Mind Making) करना पड़ता है। सबसे ऊपर एक प्रश्न है कि यह सब करने पर दुनियाँ और परिवार में पूछा जाता है कि क्या मिला ? इसका उत्तर शून्य में रखना पड़ता है।

Job satisfaction मिला– इस बात को स्वान्त सुखाय की सीमा में कैद रखना पडता है।

खैर सन् 1984 से 1988 तक के SUPW के शिविरों के दौर में शिक्षण क्षेत्र मे शिक्षकों की सहभागिता की सक्रियता का दौर छात्र–छात्राओं की गजब की सहभागिता के मिश्रण से कितनी सीमा तक परवान पर चढ सकता है– यह अनुभव भी मेरे प्रयोग का एक अविस्मरणीय अग बन गया।

यदि शिविरा कैलण्डर के अनुसार पूरे वर्ष भर विभिन्न पर्वोत्सवों पर पूर्व तैयारी के साथ पेपर रीडिग प्रत्येक अध्यापक प्रस्तुत करने का मानस बना ले तो शिक्षा जगत् में शालाओ मे अध्यापक केवल विषय अध्यापन के भाषण तक सीमित नहीं रहेगा बल्कि विभिन्न अवसरोपर विभिन्न विषयों पर नई पीढी को अपना ज्ञान दे सकेगा इस निमित्त से शिक्षक अनेक पर्वोत्सवों से सम्बन्धित व्यक्तियों की जीवनियों व उनके कार्यकलापों का ज्ञान लाभ कर सकेगा तथा पर्वोत्सवों की सामाजिक–ऐतिहासिक व धार्मिक भूमिकाओं से भी अपने आपको जोडे रख सकेगा। नई पीढी में इस प्रकार के खुले ज्ञान की कमी का परिणाम कितना हास्यास्पद होता है– इसका अनुमान राष्ट्रीय स्तर पर प्रत्यक्ष मिलता है–

'हम सावरकर और मुखर्जी को नहीं पहचानते –यादव। इन्दौर 21 सितम्बर (वार्ता)। केन्द्रीय खनिज राज्यमत्री बलराम सिह यादव का कहना है कि वीर सावरकर और श्यामाप्रसाद मुखर्जी को नहीं पहचानते और न ही उन्हें यह पता है कि ये लोग कौन हैं।

यादव ने आज यहाँ मध्यप्रदेश कॉंग्रेस (इ) अध्यक्ष दिग्विजय सिह के इस कथन का समर्थन किया कि वीर सावरकर और श्यामाप्रसाद मुखर्जी का स्वतन्त्रता आन्दोलन मे कोई योगदान नहीं रहा है।

राजस्थान पत्रिका में दि 28 सितम्बर 1992 को प्रकाशित यह समाचार हमें यह एहसास कराने के लिए पर्याप्त है कि शिक्षा जगत् में शालाओं में शिक्षण के दायरे में हम पर्वोत्सवों के आयोजनों के निमित्त से पाठ्य पुस्तकों से हटकर खुला ज्ञान भी अर्जित करें और नई पीढी को प्रदान करें जिससे कि भविष्य में राजनैतिक नेता बनने वाला छात्र हमारे

प्रजातन्त्र के मच पर ऐसी हास्यास्पद बात न बोले जैसी उपर्युक्त पक्तियों में बोली गई।

एक बार विवेकानन्द जयन्ती के आयोजन पर छात्रों ने परम्परा के अनुसार एक अध्यापक को सभा का अध्यक्ष बनाया। अध्यापकजी अध्यक्ष नहीं होना चाहते थे क्योकि वे विवेकानन्द पर कुछ भी बोलने में असमर्थ थे। किन्तु, शाला की सहज परम्परा से विमुख हो कर मना भी नहीं कर सकते थे। अत अध्यक्ष आसन ग्रहण करने से पहले जब तक सभा भवन में छात्र व्यवस्थित हो रहे थे तब तक वे मेरे दफ्तर में आए और अत्यन्त सकोच सहित पूछने लगे कि साब मैं कुछ विचार विवेकानन्द पर बोल सकूँ अत यह स्पष्ट कर दीजिये मुझे कि विवेकानन्द और दयानन्द में कोई खास फर्क तो नहीं है न। दोनों ही आर्य समाज के सदस्य थे न। उन अध्यापक जी के इस भोले प्रश्न का मैं क्या जवाब देता ? मैं भी कुछ समझ नहीं पाया कि दो मिनिट में इन्हें विवेकानन्द और दयानन्द का बुनियादी अन्तर समझा कर मच पर कुछ बोलने लायक कैसे तैयार कर दूँ ? फिर भी आठवीं–नवीं की पाठयपुस्तको को ही तुरन्त देखकर उनमें जो सामग्री मिले उसे ही समझ कर काम चलाने का निर्देश दे कर मैं मुक्त हुआ। काम तो चल गया किन्तु मैं सोचता ही रह गया कि आजादी के बाद की नई पीढियाँ यदि इसी प्रकार की तैयार होती रहीं तो इस शिक्षा शाला शिक्षण और शिक्षक का क्या होगा ? इस देश का नेता यदि सावरकर और मुखर्जी को नहीं पहचाने तो कोई आश्चर्य नहीं। हर साल पाँच सितम्बर शिक्षक दिवस को झण्डे बाँट कर पैसा तो इकटठा कर लिया जाता है लेकिन छात्र–छात्राओं को शालाओं में कितने अध्यापक–अध्यापिकाए डॉ राधाकृष्णन् के व्यक्तित्व और कृतित्व पर जानकारी दे सकते हैं ? या दे रहे हैं ? चाहे विज्ञान और गणित या वाणिज्य के ही शिक्षक क्यों न हों लेकिन हिन्दी और सामाजिक ज्ञान के शिक्षको के साथ–साथ शिक्षक होने के नाते पर्वोत्सवों पर सभी को सक्रिय भागीदारी दिखानी चाहिये। मैंने यह स्पष्ट अनुभव लिया है कि इस दिशा में आग्रहपूर्वक प्रयोग और प्रयत्न करने पर काफी सीमा तक रेसपोन्स मिलता है। प्रयत्न करने वाला होना चाहिये।

□□

Unit-IV

शालायी मंच पर सन्देशवाही मंच के प्रयोग
(Stage for Message)

शालायी मच पर सदेशवाही मच के प्रयोग (Stage for Message)

शिक्षा जगत् सदैव मच (Stage) से जुडा हुआ रहा है। वार्षिकोत्सव पर्वोत्सव बालसभा फेयरवैल पार्टियाँ आदि अनेक निमित्त ले कर शाला के मच पर नाटक नृत्य गीत कविता भाषण आदि प्रस्तुत करके छात्र–छात्राए कितना मानसिक सुख महसूस करते हैं यह हम सब जानते हैं और मानते हैं। मैं तो इस दृष्टि से यहाँ तक स्वीकार करता हूँ कि शाला के मच पर प्रस्तुत किये गये आइटम्स' छात्र–छात्राओं के चेतन–अवचेतन मन पर इतना गहरा असर डालते हैं कि जिसकी कोई सीमा नहीं। शाला की प्रार्थना सभा मे मानस निर्माण (Mind Making) की प्रक्रिया के साथ यदि शालायी मच की सदेशवाही प्रक्रिया को जोड दिया जाय तो सोने में सुहागा मिल जाय। अर्थात् शाला के मच को मूल रूप से मनोरजन या extra curricular activity मात्र नहीं मान कर Stage for Message (मच सदेश हेतु) मानते हुए साल भर मच पर इस तरह के आइटम पेश किये जाते रहें कि नई पीढी का 'Value education मूल्य शिक्षण का लक्ष्य पूरा होता रहे।

ऐसा तभी हो सकता है जब सबसे पहले हम शिक्षक होने के नाते अपने रोम–रोम मे यह व्याप्त कर ले कि पाठ्यक्रम परीक्षा परीक्षा–परिणाम लिखित कार्य रटन्त कार्य आदि जितना आवश्यक और महत्वपूर्ण है उससे एक कदम बढकर ही यह सन्देशवाही मच की प्रक्रिया आवश्यक और महत्वपूर्ण है। **यदि शिक्षक के मानस में इसकी महत्ता व सार्थकता नहीं प्रतिष्ठित होगी तो शालायी मच या तो सूना रहेगा या घिसापिटा बासी अथवा हलका और छिछला रहेगा।**

जब शिक्षक इस मान्यता से बध जाए तो यह भी आवश्यक है कि शाला प्रधान तथा प्राइवेट शाला हो तो सचालक तत्व भी ऐसे शिक्षक को सहयोग प्रदान करें। अन्यथा अकेला शिक्षक वर्ग बगैर प्रशासनिक समर्थन के कुछ नहीं कर सकेगा।

ये दोनों शर्तें पूरी हों तब विचार आगे बढता है कि अब शिक्षक वर्ग किस दिशा मे शालायी मच को ले जावे कि मूल लक्ष्य पूरा हो सके। यहाँ एक बात और स्पष्ट कर दूँ कि केवल एक सगीत शिक्षक या किसी एक रुचि सम्पन्न Activities incharge के भरोसे छोड देने से काम नहीं चलेगा। हर कक्षाध्यापक को अपनी–अपनी कक्षा को शालायी मच की दिशा मे तैयार करना होगा। आज की Public Schools अथवा Special schools में

House system को गतिविधियों की दृष्टि से अच्छा मानते हैं लेकिन मेरे अनुभव से मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि कक्षावार कक्षाध्यापक यदि अपनी–अपनी कक्षा को पूरी लगन के साथ मच के लिए तैयार करें तो ज्यादा अच्छा होगा। हाँ प्रतियोगिता के बजाय प्रस्तुतिकरण को अधिक महत्त्व दिया जाना चाहिये। प्रतियोगिता आज के युग का एक मूल्य बन गई है और फैशन भी। किन्तु यह एक जहरीला रोग है जो शिक्षण के स्वस्थ शरीर को ईर्ष्या द्वेष टूटन घुटन रुग्णताए प्रदान करता है। इसका इलाज केवल एक है कि हम प्रस्तुतिकरण को महत्त्व दें प्रतियोगिता को नहीं। हम इतने मात्र में ही सन्तुष्ट होना सीखें कि हमने अपनी कक्षा के अधिक से अधिक बच्चों को किसी न किसी रूप में मच पर प्रस्तुत होना सिखलाया और ऐसे आइटम देना सिखलाया जो मूल्य शिक्षण की मजिल को छू रहे हों!

इतना मानस बन जाने के बाद अब विचार किया जाना चाहिये कि आइटम कैसे हों ? प्राय हम यह मानकर चलते हैं कि वार्षिकोत्सव समाज सप्ताह या किसी भी अवसर पर यदि नाटक खेलना है तो बस साहित्य की पुस्तकों से बडे–बडे नाटककारों के नाटक चुने जावें ड्रैसेज बनवाई जावे उनकी रिहर्सलें इस तरह कराई जावे मानो हम थियेटर या फिल्मजगत को टक्कर देने की वाहवाही लूट सकें। या फिर हम यह मानकर चलते हैं कि समय का प्रवाह जिस दिशा मे बह रहा होउस दिशा के आइटम यदि पेश नहीं करेगे तो हमारा वार्षिकोत्सव समाजोत्सव जनता की दृष्टि मे बेकार हो जाएगा। तीसरी एक मान्यता यह भी है कि अमुक–अमुक शाला में भी भीड के सामने फलाँ–फलाँ आइटमों ने बडी धूम मचाई थी अत हमें भी ऐसी ही धूम मचाने की कोशिश करनी चाहिये वरना लोग तुलना मे हमे बेकार कहेगे।

इन तीनों प्रकार की मानसिकताओं से हमें अपने–आप को और अपने शालायी मच को बचाना होगा। हम यही अच्छी तरह समझ ले कि हमें हमारे शिक्षण जगत में मूल्य शिक्षण व मानस प्रशिक्षण करके अपनी शाला के शैक्षणिक मूल्यो की मजिल पर पहुँचना है। हमें फिल्मी हीरो या उनकी नकलें (True copies) तैयार नहीं करनी हैं। हमें कोई अपने नगर गाँव या राज्य का ऐमेचर क्लब तैयार नहीं करना है अत हमे अपने शाला के मच पर किसी भी ऐसी–शाला से बाहर की–एजेन्सी सस्था क्लब या पार्टी की घुसपैठ स्वीकार नहीं करनी है। बाजारू व्यावसायिक सगीत नाटक व पार्टियो को हमे हमारे मूल्य शिक्षण मच की डोर भूल कर भी नहीं
जीवन पूर्ण करने के बाद सामाजिक जीवन मे ऐसी
उनकी और उनके अभिभावकों की इच्छा है किन्तु
को छात्र–छात्राओ की भावनाओं से खेल करने का
मूल्य शिक्षण का इन लोगो से सबध
समय के प्रवाह के तक
दिशा मे फैसले लेने होंगे। बीस
आइटम छात्र–छात्राओं पर
का मच फिल्मीजगत की एक

में आसानी से बढ़ते हुए प्राय शिक्षकों से जिद करते हैं और अन्य स्कूलो की होड में आगे आना चाहते हैं।

इस तरह की सभी मानसिकताओ मे हमारी मानसिक दृढता ही काम आ सकेगी। यदि हम स्वय शाला व शिक्षण जगत । Stage for message की धारणा में प्रतिबद्ध हैं तो हम इन प्रवाहो और प्रतिरोधो–गतिरोधों के ज्वार के सामने टिके रह सकेंगे वरना सब बहते चले जाएगे।

हमें एक वर्गीकरण कर लेना चाहिये कि समय के प्रवाह के जो हलके व छिछले आइटम हैं जिनका केवल मनोरजनात्मक महत्व है तथा मानसिक भोजन के लायक नहीं हैं उनको बच्चो की समय–प्रवाहगत माँग को देखते हुए कैम्पफायर पिकनिक शनिवार की कक्षायी बालसभा या फेयरवैल इत्यादि केवल मनोरजन प्रधान अवसरो पर प्रस्तुत करने की अनुमति दे दें किन्तु शाला के समाज–सप्ताह (Social week) पर्वोत्सव वार्षिकोत्सव पुरस्कार वितरण समारोह छात्र ससद के उद्घाटन दिवस आदि अवसरों पर जब शाला का सामूहिक मच काम कर रहा हो वहाँ हमें दृढता पूर्वक अपनी सन्देशवाही मच तथा मूल्य शिक्षण की सैद्धान्तिक झलक ही पेश करनी चाहिये।

यह सैद्धान्तिक झलक शालायी मच पर बिलकुल साहित्यिक दार्शनिक शैक्षिणिक ऐतिहासिक सामाजिक सास्कृतिक (सही अर्थो मे) आइटमों की पेश होनी चाहिये। यह झलक ग्लैमर मुक्त किन्तु प्रभावयुक्त तथा मूल्यसयुक्त होनी चाहिये।

उपर्युक्त सभी तथ्यों के अनुसार मैंने सन् 1958 में शालायी मच के अनेक प्रयोग किये जिनका पहला बुनियादी दृष्टिकोण है कि हर कक्षा के कक्षाध्यापक अपनी–अपनी कक्षा के छात्रों को प्रोत्साहित करें निर्देशित करें सहयोग प्रदान करें कि अधिक से अधिक छात्र उस कक्षा की हिन्दी अग्रेजी सस्कृत अथवा प्रान्तीय भाषा की पाठयपुस्तकों में आई हुई कविताओं लेखों नाटकों तथा कहानियों को ही शाला के मच पर पेश करें। कविताओं–कहानियों का नाटको में रूपान्तरण भी किया जाना चाहिये। यदि हम तनिक गहराई से सोचें तो स्पष्ट होगा कि NCERT तथा राज्यों की सरकारी पाठयपुस्तकों के प्रकाशन में बाकायदा जीवन मूल्य आधारित पाठों का सकलन किया जाता है। इन पाठो को मच से जोड़ देने पर हमारा जो परीक्षा प्रणाली से जुडा मानस है वह भी सफल होगा और शालायी मच का बाजारीकरण नहीं होकर शैक्षिक रुचिपूर्ण शुद्धिकरण हो जाएगा। मच पर प्रस्तुत करने के बहाने से बच्चो को कठस्थ हो जाएगा और दर्शक बच्चो को भी वह मच के माध्यम से याद हो जाएगा जिसे शिक्षक डडे मारकर भी याद नहीं करा सका।

शालायी मच को पाठयपुस्तको से जोड देन पर बाहरी सामग्री तथा उपकरणों को ढूँढने–खोजने व तैयार करने की दिशा में हमारी परेशानी नहीं रहेगी। हम सरल व सहज प्रयत्नो से ड्रैसेज व , समस्या हल कर सके तो कर ले अन्यथा यह आग्रह व भ्रम दिमाग से निकाल दें कि यदि प्रताप और शिवाजी तथा गाँधी बनाने के लिए ड्रैसेज नहीं मिलतीं तो इनसे सम्बन्धित दृश्य मच पर दिये ही नहीं जा सकते। ऐसा नहीं। यदि गाँधी का गोल चश्मा या गजा सिर नहीं दिखाया जा सकता तो गाँधी का आइटम ही नहीं दिया

जाय– ऐसा नहीं। मेरी साफ मान्यता है कि हम मच को (शालायी मच को) अमेचर क्लब बम्बई और टी वी आदि नजरो से बिलकुल नहीं देखें। अत अपनी शाला की व घरेलू पोशाको मे ही पात्रों को मच पर पेश कर दें। बच्चो की मानसिकता इस दिशा में तैयार करनी पडती है। हमारा मूल लक्ष्य केवल एक है कि मच के माध्यम से नई पीढ़ी के चेतन अवचेतन मन को उन जीवन मूल्यों की शब्दावलियों से एकाकार कर दें कि जिन जीवन मूल्यों को नई पीढी ने केवल पाठयपुस्तक और परीक्षा के प्रश्नोत्तरों तक सीमित कर रखा है। अत कम से कम खर्च, कम से कम मेहनत कम से कम उपकरण और कम से कम समय में हमें अधिक से अधिक मूल्य मानस निर्माण का लक्ष्य पूरा करना है। हम एक मनोवैज्ञानिक तथ्य नहीं भूलें कि मच पर प्रस्तुत करने मात्र से ही उन मूल्य मुखी रचनाओं का बच्चों के सरल मानस पर उनके अवचेतन मन पर इतना असर पड़ेगा कि जिसकी हम कल्पना नहीं कर सकते।

मैंने इस दिशा में स्वय अनेक प्रयोग किये जो सफल प्रभावोत्पादक रहे। हींग लगी ना फिटकरी रग भी आया चोखा। कुछ उदाहरण प्रस्तुत कर रहा हूँ–

1 कक्षा छठी की हिन्दी की पाठयपुस्तक से ईमानदार बालक का नाटक सवादों के आरोह–अवरोह तथा हाव–भाव की गहराई के साथ अनेक बार बच्चों ने मच पर पेश किया जो हर बार सराहा गया।

2 अगेजी की पाठयपुस्तकों में प्राय सवाद शैली के पाठ अथवा पाठ के अन्त में सवादों के रूप में कुछ न कुछ सामग्री प्राय अवश्य मिलती है। इसका उपयोग छात्रों द्वारा मच पर इतना बढिया किया गया कि एक पथ दो काज हो गये। छात्रो को पाठ के पाठ कठस्थ हो गये और अग्रेजी में बोलने का सहज प्रवाह भी बनता गया।

3 भक्त मीराँ और रैदास के मिलन का दृश्य एक पाठ में वर्णित था। उसे थोडा सा सवादो मे रूपान्तरित करके मच पर हाव भाव के साथ जब मैंने पेश कराया तो छात्र–छात्राए अध्यापक और अभिभावक भाव विभोर हो उठे। मेकअप और तैयारी में कोई विशेष खर्च और समय नहीं लगा। हॉं सवाद और भाषा जबान पर लाने मे बेशक प्रयत्न करना पडा जो अदा हो गया जब परीक्षा में उस पाठ पर आये प्रश्नो का उत्तर छात्रो ने सहजरूप से लिखा।

4 एक बार अचानक कोई अतिथि शाला के अवलोकन हेतु आए हुए थे। शाला के माने हुए दानदाता थे। उनका परिचय व उनका उद्बोधन देने हेतु सभा भवन में शाला के छात्र एव अध्यापक सभी को इकटठा कर लिया गया। मच पर कुछ तो पेश किया जाये। दो–एक सामूहिक गीत दे कर पाँच सात मिनिट का ही सही पर कोई आइटम तो दिया ही जावे। प्रधानाध्यापकजी (श्री कश्यप साहब) का यह आग्रह टाला भी कैसे जावे ? मुझे मुश्किल से एक घटे पहले यह सूचना मिली। मैंने छात्रो को बुलाया। आसपास के घरों से मेकअप के लिए कपडे जो सम्भव थे उन्हे मँगा लिया और एक छोटा सा ही साहित्यिक आइटम पेश कर दिया–

चित्रकूट के घाट पर भई सन्तन की भीर
तुलसीदास चन्दन घिसे तिलक करे रघुबीर

मैंने इस भाव चित्र को मंचित कर दिया। गम्भीर बुलन्द स्वर से इन पंक्तियो की अर्द्धाली को दोहरा–दोहरा कर बोलता गया और छात्र उसी क्रम से मच पर आते गये। मच पर चित्रकूट के घाट का यह दृश्य पेश कर दिया। राम द्वारा तिलक तुलसीदास द्वारा चन्दन घिसना सन्तों की भीड एक अच्छा खासा दृश्य तैयार हो गया। अतिथि महोदय एक सौ एक रूपये की मिठाई की घोषणा भी कर गये।

ऐसे अवसरो के लिए दो–एक सामूहिक गीत हर समय तैयार रखने चाहिये कुल मिला कर Short & Sweet कार्यक्रम हो गया।

5 आठवीं कक्षा में छोटा जादूगर जयशकर प्रसाद की कहानी बरसो ही हम पढाते रहे हैं। मैंने इस कहानी के आधार पर एक ऐसा बढिया मॉनॉएक्टिंग तैयार कराया जो कई मचों पर अपनी छाप छोड गया। छात्र–छात्राओ को वह सुनते सुनते कहानी ही कठस्थ हो गई। परीक्षा मे उस पाठ के प्रश्नोंत्तर छात्र हँसते–हँसते सहज रूप मे लिख कर आते थे।

6 दसवीं कक्षा की हिन्दी की पुस्तक मे नमक का दारोगा बरसो से हम पढा रहे हैं। इस पाठ को थोडा सा सवादो मे ढाल कर मैंने दसवीं के छात्रो को प्रोत्साहित किया। यह आइटम बाजी ले गया। कोर्ट का सीन और अन्त मे सेठ आलोपीदीन और मुशी वशीधर के मिलने का ऐसा भाव भरा दृश्य मच पर छात्रो ने पेश किया कि सभी दग रह गये। कोर्ट के सवाद जो छात्रो ने स्वय बनाये वे तो मच पर बहुत ही प्रभावी रहे।

अजमेर बोर्ड के काल्पनिक प्रश्नो के उत्तर लिखने मे मच प्रयोग बहुत सफल रहा। छात्रो ने इसकी उपयोगिता को समझा।

7 सातवीं कक्षा में प्रायश्चित नाम की एक कहानी बरसों ही पढाई जाती रही है। मैंने इस कहानी को सवादो मे ढाल कर एक शाला के वार्षिकोत्सव पर पेश करा दिया। छात्राओं ने यह प्रस्तुत किया। इतना आनन्ददायक और प्रभावी रहा कि वर्णन नहीं किया जा सकता। छात्राओं ने बहुत ही हाव भाव के साथ बहू, सास पडौसी महिलाए तथा पडित जी की भूमिका लाजवाब प्रस्तुत की।

8 हायर सैकण्डरी में रैदास पर आधारित खण्ड काव्य पढाया जाता था एक बार एक शाला मे इसका कुछ अश छात्राओ द्वारा मच पर प्रस्तुत कराया तो मैं स्वय उसकी सफलता का इतना अनुमान नहीं लगा सका था।

9 एक प्राइमरी स्कूल में पहली कक्षा के बच्चो से उनकी हिन्दी पाठयपुस्तक के एक पाठ का दृश्य सवादो में ढाल कर मच पर पेश कराया। रिसेस का दृश्य दिखलाया। बच्चे टिफिन अपना–अपना कर रहे हैं। एक का टिफिन गिर गया। बच्चा रोने लगा। दूसरे बच्चे ने उसे पुचकारा। मेरे पास दो केले हैं। एक तू खा ले एक मैं खा लूँ। इतने सहज रूप मे बच्चो ने मच पर दृश्य पेश किया कि तालियों की गडगडाहट सुनने लायक थी।

10 एक प्रयोग बडा विचित्र किन्तु लाजवाब था। एक स्कूल की आठवीं कक्षा पास करके नवीं कक्षा में एक छात्र मेरी शाला में भर्ती हुआ। आठवीं तक वह छात्र अपनी उस शाला का बहुत माना हुआ यश व अतिप्रशसा पाया हुआ नृत्य करने वाला छात्र था।

उसके नृत्य में हाव-भाव और शरीर का लोच इतना स्वाभाविक था कि उस शाला के छात्र-छात्राए अध्यापक-अध्यापिकाए और पर्वोत्सवों पर आने वाले दर्शक अभिभावक आदि सब उसके नृत्य से इतने खुश और प्रभावित कि पूछो मत। उसके नृत्य में चार चाँद लग जाते थे जब उसका औरताना मेकअप कराके बाकायदा स्त्री की वेशभूषा में उसे मच पर नचाया जाता था। यश व प्रशसा पाकर वह छात्र भी खुश व गौरवान्वित, उसके माता-पिता भी बहुत खुश।

मेरे यहाँ नवीं में भर्ती होने के बाद पहला पर्वोत्सव पन्द्रह अगस्त का ही आया जिसमें कार्यक्रम इनचार्ज के चयन में भी चयनित हो कर वह छात्र अपना जाना-माना नृत्य मच पर पेश करने लगा। छात्र-छात्राओं की तालियों की गडगड़ाहट और उनकी खुशी का तौर-तरीका देख कर मैं समझ गया कि यह नृत्य अपनी पूर्व भूमिका से ही ख्याति प्राप्त लोक प्रिय रहा है।

जब चलते हुए नृत्य के बीच मुझे यह मालूम पडा कि यह लडका सदा से ही लडकी की पोशाक मे नृत्य करता आया है तब मेरे दिमाग में सबसे पहला प्रश्न यही खडा हुआ कि मेरे प्रशासन में इसे चयन कैसे किया गया ? अब बीच में रोकना मेरा सनकीपन प्रमाणित होता क्योंकि समय का प्रवाह मैं समझ रहा था। इसके अलावा छात्र का मानस भी टूटने का सबसे ज्यादा खतरा था। अत उस समय तो मैं किसी तरह चुप रहा।

दूसरे दिन सबसे पहले मैंने इनचार्ज टीचर और मच सयोजक टीचर को बुलाकर यह स्पष्ट किया कि मेरे दृष्टिकोण को समझते हुए भी उन लोगों ने यह नृत्य मच पर आने क्यों दिया ? मुझे जवाब यह मिला कि नृत्य तो अश्लील नहीं था अत चयन कर लिया गया किन्तु नारी वेश में छात्र के नृत्य को मैं उचित नहीं मानूँगा इसका पूर्व अनुमान उनको किसी को नहीं था। चूकि वह छात्र अपने पूर्व विद्यालय में पढते समय से ही आसपास के अन्य विद्यालयों मे भी लोकप्रिय नर्तक हो चुका था अत हमारी शाला के भी अध्यापक व छात्र सब इसके चयन के पक्ष में थे। मैं समझ गया कि समय का प्रवाह जबर्दस्त हावी हो रहा था।

इसके बाद आयोजित होने वाले पर्वोत्सवों में फिर एक अवसर पर उस छात्र के नृत्य को पेश करने का प्रस्ताव उभर कर आया। इस बार मैंने अध्यापक-अध्यापिकाओं की अलग से मीटिंग लेकर इस समस्या को अपने दृष्टिकोण से स्पष्ट किया। मैंने तीन-चार तथ्य समझाए –

1 यह जरूरी नहीं है कि कोई गलती अथवा अनुचित कदम अन्य स्थानों पर लोकप्रिय हो चुका है वह हमारे यहाँ भी उचित मान लिया जाय ?

2 माना कि नर्तक बनना बुरा नहीं है क्योकि नृत्य के माने हुए शिक्षक नर्तक पुरूष गुरू हुए हैं किन्तु होली के स्वाग के अलावा साधारणतौर पर जो पर्वोत्सव मनाये जाते हैं उनमे भी नारी वेष मे पुरूष का नृत्य करना शोभा नहीं देता।

3 यह नृत्य का प्रसग एक छात्र से जुडा हुआ है। पिछले इतने वर्षों से इसी तरह इस छात्र को जनाना मेकअप कर-कर के उसे अभी से स्त्रैण प्रवृत्ति का बना देने

का दोष शालाओं–अध्यापकों और शालायी मच के सिर पर मढेगा। क्या आप लोगो ने गौर नहीं किया कि यह शाला में लडकों के बीच इतना नहीं घुलता–मिलता जितना लडकियों के बीच अधिक घुलता–मिलता है। सहशिक्षा और हम वयस्क होने के कारण छात्राओं ने इसके घुलने–मिलने को आपतिजनक नहीं माना है वरना अभी तक शिकायतों का आधार भी बन चुका होता। इस छात्र के नाचते समय कुछ पुरूष अध्यापकों की नजरों के हाव–भाव भी मुझे शोभनीय नहीं लगे।

4 यदि नृत्य कला का गुण ही इस छात्र में आप देखना चाहते हैं तो इसे प्रोत्साहित कीजिये कि यह पुरूष वेश में पुरूषोचित नृत्य पेश करे तथा यदि उसके माता पिता साथ दें तो उसे शास्त्रीय नृत्य की दिशा भी दी जा सकती है। किन्तु यह जनाना नाच होली के अवसर पर स्वॉंग के रूप में तो शोभा दे सकता है केवल मनोरंजन के स्तर पर किन्तु अन्य पर्वोत्सवो पर शालायी मच पर ऐसा नाच शोभा नहीं देता।

अगले दिन दफ्तर में छात्र को बुलाकर अलग से मैंने अपना दृष्टिकोण समझाकर उसके पौरूष को जगाना चाहा। उसे वही चारों बातें मैंने बहुत शालीनता से समझाई लेकिन मुझे लगा कि न तो छात्र को मेरी बात पसन्द आई न शिक्षकों को। सबकी अन्दरूनी इच्छा थी और आग्रह था कि उस छात्र का जनानिया नृत्य मच पर पश करा जावे क्योंकि इसमें ऐसी कोई बुराई नहीं है जितनी कि मैं सोच रहा हूँ।

आखिर मुझे अपनी वीटो पावर काम मे लेनी पड़ी और सबके मन को उदास करके भी मैंने उस छात्र के नृत्य का आइटम शालायी मच पर पेश नहीं होने दिया। समय के प्रवाह और समाज की धारा में मुझे कटु, कठोर और पुरातनपथी आदि सज्ञाए दी गई। किन्तु मुझे छात्र की उस गलत धारा को बदलना था। अगला कार्यक्रम 26 जनवरी का आया। छात्र ने फिर सीधे मेरे पास आ कर अपने नृत्य को मजूरी देने का निवेदन किया। मैंने फिर अपनी बात पर अडिग रहते हुए उसे पुरूष वेश में पुरूषोचित नृत्य करने का आग्रह किया। छात्र को बहुत धैर्य और वात्सल्य के साथ मैंने समझाने की फिर कोशिश की। अन्त में मुझे खुशी हुई जब वास्तव में वह छात्र तैयार हो गया और उस 26 जनवरी पर उसने पुरूष वेश में ही पुरूष पात्र का नृत्य पेश किया। नृत्य प्रशसनीय रहा। अध्यापक–अधापिकाओं ने भारी मन से ही सही किन्तु शालायी मच की शालीनता को अन्ततोगत्वा स्वीकार किया। उस दिन कार्यक्रम के अन्त मे धन्यवाद देते समय मैंने शास्त्रीय पुरूष नर्तकों और लोककला लोकनृत्य व लोक नर्तको की पुरूष भूमिका को सबके सामने स्पष्ट किया फिर उस छात्र को मच पर बुलाकर उसकी पीठ थपथपाई तालियों की गडगडाहट के बीच छात्र को शाबाशी मिली।

मैं फिर यही कहना चाहता हूँ कि शालायी मच की शालीनता को हमें बनाना है बढाना है और Stage for message की दिशा मे ले जाना है। छिछले और हलके मनोरजन से उसे बचाना है।

अलीबाबा और चालीस चोर को मचित करने के बजाय हम शालायी मच पर उस कहानी को क्यों नहीं मचित करें कि जिसमें धर्म गुरू ने चोर की जान बचा कर चोर का हृदय परिवर्तन किया या फिर बाबा भारती ने खडगसिह का हृदय परिवर्तन करके अपना घोड़ा वापस प्राप्त किया।

हर प्रान्त और हर भाषा की लोक संस्कृति में हलके व छिछले लोकगीत व लोकनृत्य होते हैं और शालीन शास्त्रीय स्वरूप लिये हुए लोकगीत –लोकनृत्य भी होते हैं। हम शालायी मच पर उस हलके और छिछले स्वरूप को ही क्यों पेश करें ? उदाहरण के लिए हमारे राजस्थान की लोक संस्कृति में साली–जीजा के मसखरे गीत व नृत्य भी हैं और अरसी कली रो घाघरो निजारों मारै रे तथा 'छैड़ो हो जा बालमा म्हारो पल्लो लटकै' । जैसे हलके व छिछले गीत–नृत्य भी हैं किन्तु हमारी राजस्थानी लोक संस्कृति में घूमर पणिहारी सपना धरम रौ भाई करमाँबाई के भक्ति नृत्य आदि ऐसे अनेक लोक गीत – लोक नृत्य हैं जो शास्त्रीय स्वरूप लिये हुए हैं। हमारी परिवार–संस्कृति के बहुत ही उज्ज्वल पक्ष लिये हुए अनेक गीत व नृत्य हैं। उन सबको हम अपने शालायी मच पर शालीनता के साथ क्यों नहीं पेश करें ? राजस्थानी लोक संस्कृति का एक पारिवारिक चित्र देखिये –

चाँद चढयौ गिगनार
किरत्याँ ढळ रहियाँ जी ढळ रहियाँ
बाई म्हारी घरै पधार
बाबौ दै ला गाळ
बडोड़ो बीरौ बरजैला
चाँद चढ्यौ
थे मत देओ बाई नै गाळ
बाई म्हारी चिड़कोली

अब इस प्राकर के आइटम्स शालायी मच पर पेश किये जावें तो लोक साहित्य लोकगीत व लोक नृत्यो का सही व शोभनीय प्रस्तुतीकरण होगा अन्यथा लोक नृत्य के नाम पर तथा सास्कृतिक कार्यक्रम के नाम पर संस्कृति का अवमूल्यन ही हम करते हुए नजर आएगे।

पर्वोत्सव और शालायी मच के प्रसग में एक बहुत ही विचारणीय तथ्य प्रस्तुत किये बिना मैं नहीं रह सकता। पन्द्रह अगस्त 1947 के बाद हमने कितनी ही पन्द्रह अगस्त और छब्बीस जनवरी शालायी मच पर मनाई हैं लेकिन आश्चर्य और खेद का विषय है कि इन दोनों राष्ट्रीय पर्वों को शालायी मच पर इन पर्वों के बुनियादी अन्तर व स्वरूप को बारीकी से समझ कर पेश करने के बजाय हम केवल इतना ही जानते हैं कि पन्द्रह अगस्त व छब्बीस जनवरी को छात्र–छात्राओं के खूब मन पसन्द विविध रगारग गीत–नृत्य व कविताए तथा हास्य नाटक (प्रहसन) आदि पेश करके सास्कृतिक कार्यक्रम की पूर्णता का सन्तोष प्राप्त कर लिया जावे। जबकि इन दोनो राष्ट्रीय पर्वों मे बुनियादी अन्तर है। पन्द्रह अगस्त को हमारे स्वतन्त्रता सग्राम के सन् 1857 से सन् 1947 तक के ऐतिहासिक प्रसग तथा मनुष्य की स्वतत्रचेता प्रकृति–प्रवृत्ति व संस्कृति को बताने वाले कार्यक्रम पेश करने चाहिये। उस दिन लोक गीत व लोक नृत्य भी केवल वे ही प्रस्तुत हों जो स्वतन्त्रता सग्राम तथा स्वातन्त्र्य भावना से जुडे हुए हों। हम 15 अगस्त पर अन्य देशो के भी

स्वतन्त्रता सग्राम के प्रसग पेश करें लेकिन केवल फिल्मी मनोरजन के कैसेटी नृत्य पेश करना मात्र सही नहीं है। फिल्मी सगीत के भी स्वतन्त्रता सग्राम तथा देश भक्ति व वीर रस सम्बन्धी गीतो–नृत्यों को हम स्थान देवें तो शोभाजनक होगा। ठीक इसके विपरीत 26 जनवरी को हम गणतन्त्र दिवस के अनुरूप कार्यक्रम पेश करे जिनमे सवैधानिक चेतना भारत के सवैधानिक विकास के ऐतिहासिक प्रसग अन्य देशों के भी सवैधानिक प्रसग देश की खुशहाली के विकास की झाँकियाँ व प्रसग तथा बदहाली के व्यग्य छात्र ससद का ससदीय स्वरूप आदि शालायी मच पर मचित व प्रस्तुत किये जावे। केवल छात्रो को ऐसा ऑर्डर मात्र दे देने से यह बुनियादी अन्तर मच पर नहीं आएगा। अध्यापको को स्वय इस पर बारीकी से चिन्तन व मनन करके आइटमों मे बारीक अन्तर करके छात्र–छात्राओं को दिशा निर्देश देना होगा उनकी मदद करके आइटम्स तैयार कराने होंगे तब कहीं जाकर इस दिशा मे कोई चेतना जाग सकेगी वरना यही घिसापिटा तथाकथित सास्कृतिक कार्यक्रम चलता रहेगा।

मैंने अपने अध्यापकीय जीवन मे इन्हीं विचारों पर शालायीमच को दिशा देने के लिए अपनी सीमा मे जितने प्रयास कर सकता था उतने किये और शालायी मच को जितना सन्देशवाही बना सकता था उतना बनाने की भरपूर कोशिश की।

□□

Unit-V

भाषण एवं वाद-विवाद (Debate) के अनूठे शालायी प्रयोग

भाषण एव वाद-विवाद (Debate) के शालायी प्रयोग

पन्द्रह अगस्त 1947 से पहले के गुलाम हिन्दुस्तान में शालाओ मे शिक्षा और शिक्षण के कोई प्रजातान्त्रिक मूल्य नहीं थे किन्तु फिर भी आश्चर्य है कि उन दिनो हर शनिवार की बाल सभाओ में किसी न किसी विषय पर भाषण अथवा वाद विवाद का आयोजन रखा जाता था और छात्रों में अभिव्यक्ति शक्ति तथा मच पर प्रस्तुतिकरण का साहस जागृत करने का प्रयास किया जाता था किन्तु आश्चर्य एव खेद दोनों ही महसूस होते हैं जब आजादी के बाद आजाद हिन्दुस्तान में प्रजातान्त्रिक मूल्यों की स्थापना हेतु नई पीढी में अभिव्यक्ति शक्ति एव प्रस्तुतिकरण का साहस जागृत करना एक महत्वपूर्ण लक्ष्य बोध बन जाना चाहिये था और उसके लिए सक्रिय प्रयास किये जाने चाहिये थे। अत उस दिशा में शालाओ में भाषण तथा वाद–विवाद जैसी गतिविधि को अधिक से अधिक महत्व मिलना चाहिये था उस सबके बजाय हालत ये हुई कि जिला खेलकूद प्रतियोगिताओं में से भी वाद–विवाद प्रतियोगिता को समाप्त कर दिया गया।

मुझे अपने पारिवारिक सन्दर्भों में वक्तृत्व कला तथा वाद–विवाद जैसी गतिविधि के प्रति आकर्षण एव सक्रिय रुचि विरासत में मिली थी अत पाँचवीं कक्षा के विद्यार्थी काल से ही इस दिशा में शालायी मच पर मैं उभरता रहा था और फिर अध्यापकीय जीवन में छात्र–छात्राओं को इस दिशा में अधिक से अधिक उभारने का प्रयास और प्रयोग मैं करता रहा।

भाषण और वाद–विवाद (Debate) मेरा इतना प्रिय विषय रहा कि केवल शाला ही नहीं बल्कि अडौस–पडौस के बच्चे भी किसी भाषण या वाद–विवाद के लिए 'मैटर' लेने मेरे पास आ जाते तो उन्हें भी उसी रूचि और लगन से उन्हे एहसान का बोझ महसूस कराये बिना ही सहज भाव से मैटर भी लिखवा देता और बोलने की तैयारी भी करा देता। मेरी शाला के अलावा अन्य शालाओं के लिए भी प्राय अध्यापक–अध्यापिकाए मेरे पास अपने छात्र–छात्राओं को लेकर आ जाते और मैं उनको बखूबी तैयार करके भेजता।

वक्ता तैयार करने मे मुझे सदैव विशेष आनन्द आता रहा है। सत्र 1967-68 के उस दौर को मैं आज तक भूल नहीं सका हूँ जब कि भैरवरत्न स्कूल मे हायर सैकेण्डरी कक्षा की 23 छात्राओं में से 18 छात्राओं को मैंने मैटर अलग–अलग दे कर व्यक्तिश मच पर बोलने की रिहर्सल भी करा कर वक्ता तैयार कर दिया। यह कार्य ऐच्छिक (विशेष)

इस तरह प्रयत्न करने पर मुझे शालायी मच पर अनेक वक्ता और डिबेटर तैयार करने मे सफलता मिली।

डिबेट (वाद विवाद) की एक शैली होती है। वह साधारण भाषण शैली से कुछ भिन्न होती है। डिबेट में विपक्षी वक्ता पर व्यग्य ससदीय शिष्टाचार निभाते हुए कसना अध्यक्ष महोदय को बीच बीच में सम्बोधित करते हुए माध्यम बनाना विपक्षी वक्ता के ज्ञात एव सभावित अज्ञात तर्कों को काटना इत्यादि कुल मिलाकर डिबेट की एक कला तकनीक और अभिव्यक्ति शक्ति के प्रदर्शन का तौर तरीका नई पीढी सीखने को मिलता है।

इस प्रसग मे यहॉ कुछ नमूने प्रस्तुत कर रहा हूँ जिनमे वाद–विवाद की ... शैली–शब्दावली का परिचय मिल सकगा। ध्यान रहे कि वाद–विवाद (Dcbate) ...ion) सगोष्ठी (Seminar) इत्यादि विभिन्न क्षेत्रो के विषय–वाक्य की ... भिन्नता और विशेषता लिये हुए होती है जिस पर बोलने और लिखने ... करती है। वाद–विवाद के शीर्षक विषय–वाक्य की शब्दावली होती है –

(1)

... में भारतीय युवकों द्वारा पाश्चात्य सभ्यता का अन्धानुकरण है। (यह प्रतियोगिता पिलानी में बहुत वर्ष पहले आयोजित

पक्ष

...ह के माध्यम से अपने उन्मुक्त विचार प्रस्तुत करने से ... अभिवादन।

दिशा में चिन्तन मनन करने को प्रस्तुत इस चिन्तनशील ... करना चाहती हूँ कि युवक सभ्यता और अनुकरण– लिए शारीरिक बौद्धिक और आत्मिक तीनों शक्तियों के की प्रगति का लक्ष्य–वेध धूमिल न होने पाये– इसके कजला न जाये– अत देश की सभ्यता और सस्कारो उज्ज्वल भविष्य की खातिर कर्मनिष्ठ वर्तमान की दिशा करना– इन दो क्रियाओं के साथ जब 'युवक' नाम की प्रगति का चक्र सुदर्शन चक्र की गति धारण करता है। ... युवक पाश्चात्य सभ्यता के अन्धानुकरण के कारण का न घर का रहा न घाट का। कौआ चला हस की ...रतीय युवक ने अन्धानुकरण नहीं करके पाश्चात्य ...ाज देश का इतिहास कुछ और होता। कदाचित् ... होता किन्तु खेद है कि भारी से भारी मशीनरी ... भारतीय युवक विज्ञान और आत्म ज्ञान को

हिन्दी की कक्षा के अध्यापन कार्य के दौरान कक्षा में ही सम्पन्न किया गया। फिर जब छात्राए बेधड़क भाषण देने को तैयार हो गईं तब एक दिन किसी पर्वोत्सव के निमित श्री हरीश भादाणी और डॉ पूनम दैया को विशेष आमन्त्रित करके उनके सान्निध्य मे शाला मे आयोजन किया जिसमे उन 18 छात्राओ की भाषण प्रतियोगिता कराई।

वाद–विवाद और भाषण के तौर पर लिखाये गये लेखों का सग्रह मेरे पास पर्याप्त हो गया जिसे यदि प्रकाशित कराया जाय तो अलग से एक पुस्तक तैयार हो सकती है।

मेरा ऐसा मानना है कि भाषण और वाद–विवाद कोई ऐसा टैक्निकल पेचीदा क्षेत्र नहीं है और यदि भाषा शिक्षको के साथ–साथ अन्य विषयों के अध्यापक–अध्यापिकाए भी तनिक रूचि ले तो शालायी मच पर छात्र वक्ता तैयार करने मे अच्छी सफलता पाई जा सकती है। हम जिला प्रतियोगिताओ या अन्य सामाजिक सस्थाओं द्वारा आमन्त्रित खुली प्रतियोगिता मे केवल सुनिश्चित एक या दो वक्ताओ को स्कूल का नाम करने के लिए भेजते रहते हैं और तैयार करते रहते हैं। किन्तु इससे वह लक्ष्य पूरा नहीं होता जो शिक्षा के प्रजातान्त्रिक मूल्य की खातिर अधिक से अधिक वक्ता तैयार करने पर सभव होता है। ऐसी सम्भावनाओ को समस्त शाला के स्तर पर उजागर करने के लिए हर कक्षाध्यापक को अपनी–अपनी कक्षा के अधिक से अधिक छात्रों को तैयार करने की ललक और लगन जगानी होगी। समाचार पत्र व अन्य पत्र–पत्रिकाए पढते रहने का शौक अध्यापक बनने वाले हर व्यक्ति को रखना चाहिय चाहे वह किसी भी विषय का अध्यापक क्यो न हो।

समाचार पत्रों व पत्र–पत्रिकाओ मे से सामग्री सग्रह की प्रवृत्ति अध्यापक मात्र मे जगनी चाहिये। तब कहीं जाकर हर अध्यापक के पास सामग्री का भडार होगा और भाषण के लिए छात्रों को सहयोग देकर तैयार किया जा सकेगा। अन्यथा जैसा अभी तक चलता आ रहा है वही चलता रहेगा जिसमे कोई एक –दो अध्यापक इस दिशा मे भूली–चूकी रुचि दिखलाकर यदा–कदा एक–दो छात्र–छात्राओ को तैयार कर देते हैं। आजकल अध्यापको का स्वाध्याय समाप्त हो चुका है अत बौद्धिक सामग्री के अभाव मे अध्यापक भाषण व वाद–विवाद जैसे क्षेत्र मे रूचि नहीं लेते।

मैं शाला के वार्षिकोत्सव जैसे अवसर पर भी शालायी मच पर मनारजन को कम महत्व देकर शैक्षणिक आइटमों को अधिक महत्व देता आया हूँ। अत छात्र–छात्राओं के भाषण वार्षिकोत्सवों तथा पुरस्कार वितरण समारोहों में भी मैं अवश्य प्रस्तुत कराता हूँ।

एस यू पी डब्ल्यू के शिविर जब से चलने लगे हैं तब से इस दिशा में मुझे बहुत अच्छा सयोग मिला। हर साल एस यू पी डब्ल्यू के शिविरों मे सात–आठ टॉपिक विभिन्न विषयों पर सैट करके मैं शिविर में घोषित करा देता हूँ और फिर छात्र–छात्राओं की खुली प्रतियोगिता शिविर के मच पर आयोजित करा देता हूँ। बच्चों को इससे बहुत लाभ मिला। एक पथ दो काज हो गये क्योंकि बोर्ड की परीक्षा में लेख लिखने की सामग्री व तैयारी भी छात्र–छात्राओ के लिए सभव हो गई। ऐसे एक शिविर में तो मैंने अनिवार्य कर दिया कि हर छात्र को चाहे वह पेपर रीडिंग ही देवे पर मच पर बोलने तो आना ही पडेगा।

इस तरह प्रयत्न करने पर मुझे शालायी मच पर अनेक वक्ता और डिबेटर तैयार करने मे सफलता मिली।

डिबेट (वाद विवाद) की एक शैली होती है। वह साधारण भाषण शैली से कुछ भिन्न होती है। डिबेट में विपक्षी वक्ता पर व्यग्य ससदीय शिष्टाचार निभाते हुए कसना अध्यक्ष महोदय को बीच बीच में सम्बोधित करते हुए माध्यम बनाना विपक्षी वक्ता के ज्ञात एव सभावित अज्ञात तर्कों को काटना इत्यादि कुल मिलाकर डिबेट की एक कला तकनीक और अभिव्यक्ति शक्ति के प्रदर्शन का तौर तरीका नई पीढी को सीखने को मिलता है।

इस प्रसग मे यहाँ कुछ नमूने प्रस्तुत कर रहा हूँ जिनमे वाद–विवाद की उपर्युक्त शैली–शब्दावली का परिचय मिल सकगा। ध्यान रहे कि वाद–विवाद (Debate) भाषण (Elocution) सगोष्ठी (Seminar) इत्यादि विभिन्न क्षेत्रो के विषय–वाक्य की शब्दावली भी कुछ भिन्नता और विशेषता लिये हुए होती है जिस पर बोलने और लिखने वालों की शैली निर्भर करती है। वाद–विवाद के शीर्षक 'विषय–वाक्य' की शब्दावली इकतरफा सैट करनी होती है –

(1)

इस सदन की राय मे **भारतीय युवकों द्वारा पाश्चात्य सभ्यता का अन्धानुकरण ही देश की प्रगति में बाधक है।** (यह प्रतियोगिता पिलानी मे बहुत वर्ष पहले आयोजित हुई थी– छात्राओं में)

पक्ष

आदरणीय अध्यक्ष महोदय के माध्यम से अपने उन्मुक्त विचार प्रस्तुत करने से पूर्व आप सभी को मेरा यथायोग्य अभिवादन।

देश की प्रगति की दिशा में चिन्तन मनन करने को प्रस्तुत इस चिन्तनशील समुदाय को एक तथ्य पर केन्द्रित करना चाहती हूँ कि युवक सभ्यता और अनुकरण– इन तीनों का देश की प्रगति के लिए शारीरिक बौद्धिक और आत्मिक तीनों शक्तियों के विकास से सीधा सम्बन्ध है। देश की प्रगति का लक्ष्य–वेध धूमिल न होने पाये– इसके लिये अन्त करण का अगारा कहीं कजला न जाये– अत देश की सभ्यता और सस्कारो की धरोहर को आत्मसात करना उज्ज्वल भविष्य की खातिर कर्मनिष्ठ वर्तमान की दिशा में अतीत का विवेकपूर्ण अनुकरण करना– इन दो क्रियाओं के साथ जब 'युवक' नाम की सज्ञा सयुक्त होती है तब देश की प्रगति का चक्र सुदर्शन चक्र की गति धारण करता है।

ठीक इसके विपरीत भारतीय युवक पाश्चात्य सभ्यता के अन्धानुकरण के कारण न स्वदेश का रहा और न परदेश का न घर का रहा न घाट का। कौआ चला हस की चाल अपनी भी भूल गया। यदि भारतीय युवक ने अन्धानुकरण नहीं करके पाश्चात्य सभ्यता का समन्वय किया होता तो आज देश का इतिहास कुछ और होता। कदाचित् जगत्गुरु के आसन पर भारत पुन आसीन होता किन्तु खेद है कि भारी से भारी मशीनरी के पार्टस 'ऍसेम्बल' करना सीख लेने वाला भारतीय युवक विज्ञान और आत्म ज्ञान को ऍसेम्बल नहीं कर सका।

देश का युवक डॉक्टर बना इजीनियर बना। टैक्नीशियन बना अमेरिका ऑस्ट्रेलिया इग्लैण्ड रूस और न जाने कहाँ–कहाँ का 'रिटर्ण्ड' बना मगर अफसोस सिर्फ एक ही रहा कि वह 'सैल्फ गवर्ण्ड' नहीं बना। परिणामस्वरूप भारतीय युवक अपनी सरकार का सभ्यता का माता–पिता का जीवन व्यवस्था का आलोचक तो बन गया किन्तु पाश्चात्य सभ्यता के 'प्रैग्मैटिक ऐटिट्यूड' का विवेकपूर्ण अनुकरण करके भारतीय युवक अपने अन्तर् में वह आक्रोश व विद्रोह वह आग नहीं जगा सका जो सुलगने पर समाज–परिवार–सरकार सब को तपा कर शुद्ध कर देती है।

मेरे अनेक विपक्षी विचारक चिन्तन के इन क्षणों में पाश्चात्य सभ्यता के दोषों की राग अलापेंगे। मेरी नम्र राय है कि वह सम्यक दृष्टि नहीं होगी। दोष पाश्चात्य सभ्यता का नहीं। बल्कि उसके अन्धानुकरण का है और वह अन्धानुकरण भी जब युवकों ने किया तो देश को सही दिशा कौन देता ?

पाश्चात्य सभ्यता में ढला देश का इजीनियर 'एईएन 'ऍक्सईऍन ' की 'सुपीरियोरिटी के ख्वाब तो सजो बैठा किन्तु पाश्चात्य इजीनियरों की तरह श्रमनिष्ठा नहीं ग्रहण करने के कारण बिगडी हुई मशीन को सुधारने के लिए अपनी काया–माया को कष्ट देने में 'इन्फीरियोरिटी महसूस करने लगा। उसे हर समय एक खलासी चाहिए।

गौरवशाली ग्रामीण सस्कृति के मेहनतकश भारत का ग्रामीण युवक भी पाश्चात्य सभ्यता के अधानुकरण की चपेट से अपने–आप को बचा न सका। बगल में ट्राजिस्टर दबा कर रेडियो सीलोन के व्यापार विभाग का कुशला श्रोता तो ग्रामीण युवक बन गया किन्तु नई रोशनी के ज्ञान–विज्ञान और कला को ग्रामीण सस्कृति के निखारने के लिए उपयोग मे नहीं ला सका। ग्रामीण युवक से पूछ कर तो देखिये कि ट्राजिस्टर से कृषक वार्ता कितनी बार सुनी ? ग्रामीण युवक रही–सही अपनी श्रम निष्ठा की दिव्यदृष्टि भी शहरी रोशनी की चकाचौंध मे लुटा आया। श्रम शक्ति भी गँवा आया। छाछ और राबडी से जीवनी शक्ति पाने वाले ग्रामीण को अब चाय की घूट के साथ ऍनासिन चाहिये।

अब मैं एक और मौलिक तथ्य प्रस्तुत करना चाहती हूँ। भारतीय युवक के साथ भारतीय युवतियों को भी कुछ विचारक उत्तरदायी ठहरायेंगे। विपक्षी विचारकों से मेरा फिर नम्र निवेदन है कि यह सम्यक दृष्टि नहीं होगी। ऐसे विचारक प्रस्तुत विषय के पक्ष से भी पक्षाघात कर बैठे हैं। भारत की जिस नारी को साहित्यकारों ने छन्दों के अलकारों में बाधा समाज के ठेकेदारों ने चाँदी के अलकारों में बाँधा और यदि भूल से इन दोनो से मुक्त होकर नारी कहीं चली तो मार्ग में मधुशाला की पायल की झनकारों ने उसे बाँधा–सदियों–सदियों तक बाँधा। उस नारी को आज भी तथाकथित आजादी देकर देश की प्रगति के लिये उत्तरदायी ठहराना चाहते हो ? आशा ही नहीं दुराशा है जो मात्र निराशा में फलीभूत होगी यदि भारतीय युवक ने पाश्चात्य सभ्यता का विवेकपूर्ण अनुकरण किया होता तो ये निरीह भारतीय युवतिया भी जो आज गुमराह होती दिख रही हैं गुमराह नहीं होतीं। भारतीय युवक स्वय अपने–आपको आज सन् 1970 तक भी जाति–बिरादरी प्रान्त–भाषा धर्म–सम्प्रदाय आदि के जजाल से मुक्त नहीं कर सका यहाँ तक कि

सामाजिक कुरीतियो के विरोध मे परिवार और समाज का भी हिम्मत के साथ सामना नहीं कर सका– ऐसा भारतीय युवक अकर्मण्य हो रहा है उसका दैनिक जीवन भी निष्क्रिय तथा कर्त्तव्य विमुख हो रहा है।

अन्त में एक विदेशी पर्यटक की अनुभूति प्रस्तुत करना चाहती हूँ जिसने कहा था–
'वी फॉरेनर्स वर्क लाइक ए कुली ऍण्ड लिव
लाइक ए लॉर्ड बट यू इडियन्स वर्क
लाइक ए लॉर्ड एण्ड लिव लाइक ए कुली

बस ! इसी श्रम व कर्त्तव्यनिष्ठ सकेत की ओर सपूर्ण सदन का ध्यान केन्द्रित करते हुए देश की प्रगति के लिए युवकों की रचनात्मक कर्तव्यमुखी शक्तियो का आह्वान करते हुए मैं अपना स्थान ग्रहण करती हूँ।

जय भारत !

विपक्ष

पिलानी की हिन्दी वाद–विवाद समिति के स्नेही परिजनो ! इस सदन विशेष में मचसहित आमन्त्रित विद्वज्जनो !! आप सभी को मेरा विनम्र अभिवादन !

प्रस्तुत विषय के विपक्ष का विश्लेषण करने से पूर्व मैं विषय के शब्दश तात्पर्य की ओर मूल दिशा की ओर सदन का ध्यान केन्द्रित करना चाहती हूँ ! भारतीय युवको का पाश्चात्य सभ्यता का अन्धानुकरण किस प्रकार हुआ या नहीं इसकी केवल विशद व्याख्या करके– वह देश की प्रगति में बाधक है– यह प्रतिपादित कर देना मात्र ही पर्याप्त नहीं होगा ! विषय का वाक्य विन्यास 'ही शब्द पर बल (एम्फेसिस) दे रहा है उस एम्फेसिस को समझने की जरूरत है। इस प्रमुख सकेत के पश्चात् अब मैं विषय का विश्लेषण करती हूँ।

बन्धुजनो ! 'युवक–शक्ति' वह आदम–कद शीशा है– निर्मल बेदाग शीशा कि जिसमे कोई भी देश अपने सामाजिक शरीर का यथार्थ स्वरूप दर्शन कर सकता है। तत्पश्चात् यदि वह शरीर रुग्ण है तो अपना कायाकल्प करने का सहज निर्णय ले सकता है किन्तु अफसोस तो यही होता है जब भारत का गला–सडा सामाजिक धार्मिक और राजनैतिक शरीर आत्मप्रवचना की हद तक पहुँच कर बेदाग शीशे को ही धुधला सिद्ध कर रहा है।

हमारे समाज की इसी आत्मप्रवचक मन स्थिति ने भारतीय युवको पर सीधा आक्षेप किया है। जैसे मानो युवकों ने यदि पाश्चात्य सभ्यता का अधानुकरण नहीं किया होता तो देश की प्रगति मे बाधा नहीं पडती। भारत की इस बौद्धिक नादानी पर मुझे तरस आ रहा है।

जब तक आजादी नहीं मिली थी तब तक युवक चाहे जैसा भी था उसमें किसी को कोई दोष नजर नहीं आता था। क्योकि व जान की बाजी लगाने मे सबके आगे था। किन्तु आजादी के बाद जब शानोशौकत की आतिशबाजी और कुर्सी पकडो की जल्दबाजी में युवकों ने साथ नहीं दिया तो इसीलिए वे 'तथाकथित बाधक बन गये !! मैं मेरे विपक्षी विचारको से पूछना चाहती हूँ कि देश की प्रगति के लिए देश के तथाकथित कर्णधारों मे से हाथ बढाकर युवकों का साथ लिया किसने ? युवकों को पूछा किसने ?

आज तक काश्मीर का मसला त्रिशकु की तरह लटक रहा है देश की प्रगति की कडी से कहीं दूर अटक रहा है– क्या युवको की पाश्चात्यता के कारण ? हूँ । अन्तर्राष्ट्रीयता की उदारता और उग्र राष्ट्रीयता के अनुदारता के द्वन्द्व में नेहरू और पटेल की आस्थाओ का 'बाई–प्रोडक्ट है– यह लटकता कश्मीर ।

तथाकथित पाश्चात्यता से 'एलर्जी है न ! खैर भारतीय सभ्यता और सस्कृति के ठेकेदार और कर्णधार लाखो–लाखों भारतीयों के मानस के प्राणाधार गुरु शकराचार्य गुरु गोलवलकर आचार्य तुलसी सुशील मुनि इत्यादि शीर्षस्थ नेता और धर्माचार्य अपने–अपने विशाल सगठनो– आर्य समाज साधु समाज राष्ट्रीय स्वय सेवक सघ हिन्दू महासभा अणुव्रत विहार इत्यादि के साथ देश की प्रगति के लिये अपनी शक्तिया अपने प्रयास अपनी दिशाए सगठित क्यो नहीं कर देते ? राष्ट्रीय एकता की दुहाई देने वाले ये राष्ट्रीय सगठन स्व्य एकता क्यो नहीं दिखलाते ? बेचारे हिन्दू, आर्य और सनातन शब्दो की व्याख्या सुलझाने मे ही उलझ रहे हैं बेचारे राष्ट्रीयकरण भारतीयकरण मानवीयकरण और एकीकरण के चौराहे पर भटक रहे हैं। खिसियानी बिल्ली खम्भा नोचे ! युवकों के तथाकथित अन्धानुकरण को दोष दे रहे हैं ! आज भी देश की प्रगति की खातिर ये सब शक्तिया और सगठन एक हो जाए तो हम युवक– तथाकथित पाश्चात्य रग मे रगे युवक– उन्हे कहाँ बाधक हैं ?

आन्ध्र मे जब जिन्दा हरिजन जलाया गया तेलगाना का रौद्र रूप विघटनकारी स्वरूप सामने आया उसमे भारत की भारतीय सभ्यता का रग झलक रहा था या युवकों की पाश्चात्यता का ?

अब अन्त मे इस महान देश की प्रगति के लिये उत्तरदायी एक महान रहस्य को प्रस्तुत कर रही हूँ। अभी कुछ महिनो पहले निजलिगप्पा ने अफसोस व्यक्त किया था कि इन्दिरा गाधी को दल का नेता बनाने से पूर्व वैंकटेश्वर प्रभु की अनुमति नहीं ली गई थी इसलिए कॉग्रेस खण्डित हुई। इस सदन मे उपस्थित बुद्धिवादियो से मैं पूछना चाहती हूँ कि यदि बौद्धिकता के प्रति तनिक भी ईमानदारी है तो जवाब दीजिये कि जिस भारत के महान् राजनैतिक सगठन के भी विघटन और सगठन का उत्तरदायित्व वैंकटेश्वर प्रभु पर आधारित है तब देश की प्रगति के लिये हम युवको की तथाकथित पाश्चात्यता कहाँ बाधक है ?

देश की प्रगति की ईमानदारी से चिन्ता करनी है तो हमे यह समझना ही होगा कि हमारे देश की विशाल जन–जीवन की सामान्य आस्थाओं की अन्धता और विश्वासों की वर्णसकरता ने हमारे देश में व्यापक रूप से एक बौद्धिक बिखराव और भटकाव प्रदान किया है जो द्वन्द्व बनकर देश की प्रगति को निर्द्वन्द्व नहीं होने दे रहा है। भारत की युवक शक्ति निर्मल है बेदाग है !

जय जवान !

(2)

इस सदन की राय में बालक के मानसिक विकास के लिये साधनों की आवश्यकता है।

पक्ष

आदरणीय अध्यक्षजी समादरणीय गुरुजन और मेरी हमजोली बहिनों !

आज अध्यक्षजी के माध्यम से मैं आप सब के सामने विषय के पक्ष मे अपने विचार रखते हुए यह तथ्य अनुमोदित करना चाहूँगी कि बालक के मानसिक विकास के लिए साधनों की आवश्यकता है।

श्रीमान् मनुष्य के जीवन में प्रत्येक क्षण प्रत्येक क्षेत्र और प्रत्येक दिशा में निर्माण का महत्व है। मनुष्य इस सृष्टि की सर्वश्रेष्ठ रचना है इसी कारण मनुष्य के जीवन में सृजन का रचना का अथवा निर्माण का बडा महत्व है। मनुष्य की सर्वश्रेष्ठता का मूल आधार शिक्षा है। ऐसी स्थिति मे शिक्षा को मनुष्य के जीवन के निर्माण अथवा सृजन का सबसे बडा क्षेत्र माना जाये तो अत्योक्ति नहीं होगी। हमारे दैनिक जीवन मे एक साधारण से भवन शाला अथवा कुटिया का निर्माण भी किया जाता है तो साधन जुटाये जाते हैं। मामूली सा उद्योग सचालित किया जाये तो भी साधनों को प्रधानता दी जाती है तब मनुष्य की सर्वश्रेष्ठता का मूल आधार शिक्षा के क्षेत्र मे साधनों को नकारना या साधनों की आवश्यकता को इनकार करना मनुष्य के जीवन की सबसे बडी नादानी होगी और फिर जिसमें बालक के मानसिक विकास का तो मूल आधार ही शिक्षा है तब बालक के मानसिक विकास के क्षेत्र मे साधनो के महत्व को नकारना तो बुद्धि और समझदारी के दिवालियेपन का लक्षण होगा।

माननीय अध्यक्षजी ! क्या मेरी विपक्षी बहिनें अपनी बुद्धि के इसी दिवालियेपन की घोषणा कर चुकी हैं ? यदि ऐसा ही है तो मेरा विनम्र निवेदन है– अपनी इन विपक्षी बहिनों से कि वे तनिक समझदारी से काम ले और मेरे साथ इस बात को स्वीकार करे कि बालक के मानसिक विकास के लिये साधनो की आवश्यकता है अवश्य है।

बालकों के विकास की दिशा में साधनों की आवश्यकता को महसूस नहीं करने वाले विचारक आज सन् 1980 में सास लेते हुए भी सन् 1780 की कार्बनडाई ऑक्साइड को ही प्राण वायु मानकर जीना चाहते हैं।

श्रीमान् ! तनिक आखे खोलकर देखा जाये तो जहा देखो वहा जीवन के हर क्षेत्र में विकास के बढते हुए कदम साधनो के बढते हुए कदमो से ताल पर ताल मिला रहे हैं। मेरी विपक्षी बहिनों से मेरा आग्रह है कि उस ताल में वे बेताल सिद्ध न हों। खेती में नये साधन चिकित्सा में नये सगधन बिजनैस में नये से नये साधन खेलों में नवीनतम साधन और साज–सज्जा में आधुनिकतम साधन ! तब फिर शिक्षा ने ऐसा कौनसा अपराध किया है और वह भी बालकों के मानसिक विकास ने कौनसा गुनाह किया है जो उसे साधनों की आवश्यकता से वचित रखने का षडयन्त्र मेरी विपक्षी बहिनें कर रही हैं ? इस सदन में उपस्थित सभी सदस्यो से मेरा अनुरोध है कि वे इस षडयत्र में शामिल न हो।

हम यह न भूल जाए कि बालक की आयु मनुष्य के सर्वश्रेष्ठ जीवन की सर्वश्रेष्ठ आयु का भाग है और इस आयु में वह जितना विकास कर लेता है उतना ही उसके जीवन का भारी विकास सभव होता है। इसलिए अधिक से अधिक साधनों का वल्कि आधुनिकतम साधनों का उपयोग करके बालक के मस्तिष्क का विकास करने के लिए शिक्षा को धनवान बनाया जाये तभी मानव का सही विकास हो सकेगा।

आज तक काश्मीर का मसला त्रिशकु की तरह लटक रहा है देश की प्रगति की कडी से कहीं दूर अटक रहा है— क्या युवकों की पाश्चात्यता के कारण ? हँ । अन्तर्राष्ट्रीयता की उदारता और उग्र राष्ट्रीयता के अनुदारता के द्वन्द्व में नेहरू और पटेल की आस्थाओं का 'बाई–प्रोडक्ट है— यह लटकता कश्मीर ।

तथाकथित पाश्चात्यता से 'एलर्जी है न ! खैर भारतीय सभ्यता और सस्कृति के ठेकेदार और कर्णधार लाखो–लाखों भारतीयो के मानस के प्राणाधार गुरु शकराचार्य गुरु गोलवलकर आचार्य तुलसी सुशील मुनि इत्यादि शीर्षस्थ नेता और धर्माचार्य अपने–अपने विशाल सगठनो– आर्य समाज साधु समाज राष्ट्रीय स्वय सेवक सघ हिन्दू महासभा अणुव्रत विहार इत्यादि के साथ देश की प्रगति के लिये अपनी शक्तिया अपने प्रगास अपनी दिशाए सगठित क्यो नहीं कर देते ? राष्ट्रीय एकता की दुहाई देने वाले ये राष्ट्रीय सगठन स्व्य एकता क्यो नहीं दिखलाते ? बेचारे हिन्दू, आर्य और सनातन शब्दो की व्याख्या सुलझाने मे ही उलझ रहे हैं बेचारे राष्ट्रीयकरण भारतीयकरण मानवीयकरण और एकीकरण के चौराहे पर भटक रहे हैं। खिसियानी बिल्ली खम्भा नोचे ! युवकों के तथाकथित अन्धानुकरण को दोष दे रहे हैं ! आज भी देश की प्रगति की खातिर ये सब शक्तिया और सगठन एक हो जाए तो हम युवक– तथाकथित पाश्चात्य रग मे रग युवक– उन्हे कहाँ बाधक हैं ?

आन्ध्र मे जब जिन्दा हरिजन जलाया गया तेलगाना का रौद्र रूप विघटनकारी स्वरूप सामने आया उसमे भारत की भारतीय सभ्यता का रग झलक रहा था या युवको की पाश्चात्यता का ?

अब अन्त मे इस महान देश की प्रगति के लिये उत्तरदायी एक महान रहस्य को प्रस्तुत कर रही हूँ। अभी कुछ महिनो पहले निजलिगप्पा ने अफसोस व्यक्त किया था कि इन्दिरा गाधी को दल का नेता बनाने से पूर्व वैंकटेश्वर प्रभु की अनुमति नहीं ली गई थी इसलिए कॉग्रेस खण्डित हुई। इस सदन मे उपस्थित बुद्धिवादियो से मैं पूछना चाहती हूँ कि यदि बौद्धिकता के प्रति तनिक भी ईमानदारी है तो जवाब दीजिये कि जिस भारत के महान् राजनैतिक सगठन के भी विघटन और सगठन का उत्तरदायित्व वैंकटेश्वर प्रभु पर आधारित है तब देश की प्रगति के लिये हम युवकों की तथाकथित पाश्चात्यता कहाँ बाधक है ?

देश की प्रगति की ईमानदारी से चिन्ता करनी है तो हमें यह समझना ही होगा कि हमारे देश की विशाल जन–जीवन की सामान्य आस्थाओं की अन्धता और विश्वासों की वर्णसकरता ने हमारे देश में व्यापक रूप से एक बौद्धिक बिखराव और भटकाव प्रदान किया है जो द्वन्द्व बनकर देश की प्रगति को निर्द्वन्द्व नहीं होने दे रहा है। भारत की युवक शक्ति निर्मल है बेदाग है !

जय जवान !

(2)

इस सदन की राय मे बालक के मानसिक विकास के लिये साधनों की आवश्यकता है।

पक्ष

आदरणीय अध्यक्षजी समादरणीय गुरुजन और मेरी हमजोली बहिनो !

आज अध्यक्षजी के माध्यम से मैं आप सब के सामने विषय के पक्ष में अपने विचार रखते हुए यह तथ्य अनुमोदित करना चाहूँगी कि बालक के मानसिक विकास के लिए साधनो की आवश्यकता है।

श्रीमान् मनुष्य के जीवन मे प्रत्येक क्षण प्रत्येक क्षेत्र और प्रत्येक दिशा मे निर्माण का महत्व है। मनुष्य इस सृष्टि की सर्वश्रेष्ठ रचना है इसी कारण मनुष्य के जीवन में सृजन का रचना का अथवा निर्माण का बडा महत्व है। मनुष्य की सर्वश्रेष्ठता का मूल आधार शिक्षा है। ऐसी स्थिति मे शिक्षा को मनुष्य के जीवन के निर्माण अथवा सृजन का सबसे बडा क्षेत्र माना जाये तो अत्योक्ति नहीं होगी। हमारे दैनिक जीवन मे एक साधारण से भवन शाला अथवा कुटिया का निर्माण भी किया जाता है तो साधन जुटाये जाते हैं। मामूली सा उद्योग सचालित किया जाये ता भी साधनो को प्रधानता दी जाती है तब मनुष्य की सर्वश्रेष्ठता का मूल आधार शिक्षा के क्षेत्र मे साधनों को नकारना या साधनों की आवश्यकता को इनकार करना मनुष्य के जीवन की सबसे बडी नादानी हागी और फिर जिसमें बालक के मानसिक विकास का तो मूल आधार ही शिक्षा है तब बालक के मानसिक विकास के क्षेत्र मे साधनों के महत्व को नकारना तो बुद्धि और समझदारी के दिवालियेपन का लक्षण होगा।

माननीय अध्यक्षजी ! क्या मेरी विपक्षी बहिनें अपनी बुद्धि के इसी दिवालियेपन की घोषणा कर चुकी हैं ? यदि ऐसा ही है तो मेरा विनम्र निवेदन है– अपनी इन विपक्षी बहिनो से कि वे तनिक समझदारी से काम लें और मेरे साथ इस बात को स्वीकार करे कि बालक के मानसिक विकास के लिये साधनो की आवश्यकता है अवश्य है।

बालकों के विकास की दिशा में साधनों की आवश्यकता को महसूस नहीं करने वाले विचारक आज सन् 1980 में सास लेते हुए भी सन् 1780 की कार्बनडाई ऑक्साइड को ही प्राण वायु मानकर जीना चाहते हैं।

श्रीमान् ! तनिक आखे खोलकर देखा जाय तो जहा देखो वहा जीवन के हर क्षेत्र मे विकास के बढते हुए कदम साधनो के बढते हुए कदमो से ताल पर ताल मिला रहे हैं। मरी विपक्षी बहिनो से मेरा आग्रह है कि उस ताल में वे बेताल सिद्ध न हों। खेती मे नये साधन चिकित्सा मे नये रगधन बिजनैस में नये से नये साधन खेला में नवीनतम साधन और साज–सज्जा में आधुनिकतम साधन। तब फिर शिक्षा ने ऐसा कौनसा अपराध किया है और वह भी बालकों के मानसिक विकास ने कौनसा गुनाह किया है जो उस साधनो की आवश्यकता से वचित रखने का षडयन्त्र मेरी विपक्षी बहिनें कर रही हैं ? इस सदन मे उपस्थित सभी सदस्यो से मेरा अनुरोध है कि वे इस षडयत्र में शामिल न हो।

हम यह न भूल जाए कि बालक की आयु मनुष्य के सर्वश्रेष्ठ जीवन की सर्वश्रेष्ठ आयु का भाग है और इस आयु में वह जितना विकास कर लेता है उतना ही उसके जीवन का भारी विकास सभव होता है। इसलिए अधिक से अधिक साधनो का बल्कि आधुनिकतम साधनों का उपयोग करके बालक के मस्तिष्क का विकास करने के लिए शिक्षा को धनवान बनाया जाये तभी मानव का सही विकास हो सकेगा।

शिक्षा के क्षेत्र में क्या हिन्दी क्या गणित क्या ज्ञान–विज्ञान क्या कला क्या उद्योग सभी क्षेत्रों में बालक को साधनों के द्वारा शिक्षा दी जाए तो बालक की मानसिक ग्रंथिया शिक्षा के गहन से गहन तत्वों को सरलता से ग्रहण कर लेंगी और विकास का मार्ग सुगम हो जायेगा। आज शाला के क्षेत्र में बालक की अरुचि और आलस्य के कारण विकास में जो बाधा दिखाई देती है उसकी जगह बालक में एकाग्रता लगन और तत्परता दिखाई देने लगेगी यदि साधनों की सहायता से बालक का विकास किया जाए।

अत इस सदन से मेरा अनुरोध है कि मेरे विचार का समर्थन करें और यह स्वीकार करें कि बालक के मानसिक विकास के लिए साधनों की आवश्यकता है।

विपक्ष

इस सदन के माननीय अध्यक्ष आदरणीय निर्णायकगण और मेरी साथी बहिनों! मुझे प्रसन्नता है कि मैं आज के विचारणीय विषय के विपक्ष में अपनी राय प्रस्तुत करने जा रही हूँ। मेरी स्पष्ट मान्यता है कि बालक के मानसिक विकास के लिये साधनों की आवश्यकता नहीं है बिल्कुल नहीं। इन साधनों की आवश्यकताओं का नारा उन लोगों ने बुलन्द किया है जिनके पास अपार धन–दौलत है और जिनका दृष्टिकोण सर्वथा पूजीवादी है। मनुष्य की पूजीवादी धारणाओं ने समाज को 'बिजनैस माइंड' प्रदान किया है जो विज्ञापनों से सचालित होता है। साधनो का नारा विज्ञापन युग की देन है।

मैं मेरी विपक्षी विचारकों से पूछना चाहती हू कि साधनों की आवश्यकता को सिद्ध करके सैंकडो साधन जुटाकर के भी बालक के मानसिक विकास में वे कौनसे सलमे–सितारे जोड देना चाहती हैं ? गणित मे दुनिया भर के साधनों के प्रयोग द्वारा गणित सिखाने वाले आज दफ्तरो में उद्योगो मे तथा अन्य अनेक क्षेत्रों मे केलकुलेटर का प्रयोग करते दिखते हैं। जबकि दूर क्यों जाए ? इसी बीकानेर में प्रसिद्ध भाइया मास्जा के गणित सिखाये हुए बालक आज जहॉ–जहाँ पहुँचे हैं वहॉ–वहॉ चुटकियों मे करोडों का हिसाब–किताब मुँह जबानी करते–करते बूढे हो चके हैं। मेरा सीधा सकेत यही है कि बिना साधनो के यदि बालक का इतना जबर्दस्त विकास किया जा सकता है तो इन साधनो की दुनिया मे बेकार क्यों भटका जाए ? बिना साधन के भी जब विद्यार्थी स्वय केलकुलेटर बन जाता है वहाँ आज का विद्यार्थी केलकुलेटर की माग करता है। क्या यह विकास की गलत परिभाषा नहीं है ? यानि हम यह क्यो नहीं स्वीकार करे कि शिक्षा के क्षेत्र मे हमारे शिक्षको की तर्क शक्ति कल्पना शक्ति विश्लेषण शक्ति और धैर्य व सहनशक्ति का ही विनाश हो चुका है जिसकी कमी को पूरा करने के लिए वे साधनों की आवष्यकता महसूस करते हैं। लगता है कि शिक्षा के क्षेत्र में कुछ लगडापन आ गया है जिसे बैशाखी चाहिए और मेरे विपक्षी विचारक ऐसी ही बैशाखी की वकालत कर रहे हैं। अध्यक्षजी से मेरा निवेदन है कि अन्तिम न्याय उनके पक्ष मे नहीं जाने दें। शिक्षा के क्षेत्र को बैशाखिया देने की बजाय अध्यापकीय तकनीकी का वह सजीवन प्रदान किया जाए जो उसके पैरो को बलवान बना दे।

बालक का मानसिक विकास करने के लिए साधनों के विकास की दिशा जिन शिक्षा शास्त्रियो ने दी है– मैं उनके सम्मुख नतमस्तक हूँ लेकिन इतना तो कहूँगी ही

कि वे शिक्षा शास्त्री एक बहुत बडा तथ्य भूल गये। साधनों के ससार में रमता हुआ बालक शिक्षक के यानि अपने गुरु के गुरुत्व और उसके अपनत्व की सीमा से कोसों दूर भटक गया है और फिर अब वही शिक्षा शास्त्री सब सर पर हाथ धरकर रो रहे हैं कि आज बालक का विकास एकागी हो गया। बालक तर्कशील तो हो गया लेकिन भावनाशील नहीं रहा।

श्रीमान् निर्जीव साधनों के बीच पलता हुआ बालक मानव की सजीव ममता और मार्मिकता को छू नहीं सकता। अत मेरा निवेदन है कि इस सदन मे बहुत गभीरता से विचार किया जाए और साधनों की चमक–दमक से शिक्षा क्षेत्र को बचाकर शिक्षा के मूल लक्ष्य को पूरा करने के लिये ध्यान केंद्रित किया जाए।

मेरी विपक्षी बहिनों से मैं पूछना चाहती हूँ कि मीरा सूर और तुलसी का विकास कौनसे साधनों से किया गया था ? गाँधीजी ने कौनसी मोन्टेसरी शिक्षा पाई थी ? जगदीश चन्द बसु किस किन्डरगाटन स्कूल में पढने गये थे ? सम्राट अकबर को कौनसा मेयोकॉलेज पढने को मिला था ? मेरा सीधा सकेत यही है कि बालक के मानसिक विकास के लिए साधन–प्रसाधन की आवश्यकता नहीं है बल्कि बालकों के विकास के लिए आवश्यकता है– सही अर्थों में गुरुत्व लिये हुए अध्यापकीय चेतना की ज्ञान की गरिमा की अध्यापकों के ममत्व और वात्सल्य की। इन सबकी कमी को साधनों से न आज पूरा किया जा सकता है न कल।

अत अत मैं मेरा इस सदन से अनुरोध है कि मेरे विचार से सहमत होकर मेरी आवाज से आवाज मिलाकर यह घोषणा करे कि बालक के मानसिक विकास के लिए साधनों की आवश्यकता नहीं है बिल्कुल नहीं।

(3)

इस सदन की राय में अन्तर्राष्ट्रीय भावात्मक एकता में युवा वर्ग की भूमिका ही महत्वपूर्ण है ।

(इस विषय पर दो डिजाइनों से युवकों की भूमिका को प्रस्तुत किया गया है अत पक्ष विपक्ष के बजाय प्रस्तुतीकरण की स्टाइल को गौर से देखा और समझा जाए लेखक)

पहला डिजाइन

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कुछ विचार करने और कुछ निर्णय लेने के लिये आयोजित इस सभा के आदरणीय अध्यक्षजी मुख्य अध्यक्ष महोदय और स्नेही विद्यार्थी वर्ग। आप सबको मेरा अभिवादन।

चाहे कोई भी देश समाज या परिवार हो चाहे मनुष्य का व्यक्तिगत जीवन ही क्यो न हो युवा वर्ग की भूमिका सभी क्षेत्रों में महत्वपूर्ण है। मनुष्य के जीवन की यह अवस्था इतनी शक्तिशाली और ऊर्जायुक्त होती है कि जिसकी कोई सीमा नहीं है। यही कारण है कि युवा वर्ग से जीवन की हर ऊँचाई गहराई के आयाम नाप लेने की आशाएँ की जाती हैं।

भावात्मक एकता की समस्या अथवा मनुष्य के जीवन की अनेक समस्याओं के समाधान के रूप में भावात्मक एकता केवल भारत ही नहीं बल्कि प्रत्येक देश के लिए आवश्यक विषय बन गया है। भावात्मक एकता को हम केवल भारत के अलग–अलग

धर्म और जातियों की एकता की सीमा में सोचें तो यह बहुत छोटी सी सीमा होगी। आज भावात्मक एकता समूचे विश्व के लिये आवश्यक हो गई है। थोड़ा सा खुले दिल-दिमाग से सोचने की जरूरत है।

विश्व के युवा वर्ग को सबसे पहले यह आस्था और विश्वास मजबूत करना होगा कि अब समाप्त होती हुई बीसवीं सदी और आने वाली इक्कीसवीं सदी का मानव अपने जीवन को केवल देश काल की सीमा में सीमित मानकर जी नहीं सकता। ऐसा दृष्टिकोण सबसे बडा भ्रम होगा जिसे रूढिग्रस्त विवेकहीन और कूपमडूक व्यक्ति तो पा सकते हैं लेकिन युवा वर्ग यदि ऐसे भ्रम को पालकर जीएगा तो इक्कीसवीं सदी की परिभाषा और उसका स्वरूप धूमिल हो जाएगा।

तो इस सदन में मेरा सबसे पहला और प्रमुख निवेदन यही है कि हमारे आज के युवक वर्ग को अपनी दृष्टि का सस्कार व परिष्कार करना होगा। भावात्मक एकता को देश-काल-सीमा से परे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सोचना व समझना होगा।

यदि हमारा भारत हिन्दू, मुस्लिम सिक्ख ईसाई सम्प्रदायों के बीच धर्म और धर्मान्तरण के झगडों में उलझता हुआ भावात्मक एकता के लिये प्रयत्नशील है तो हम यह न भूलें कि काले व गोरे के झगडों ने अमेरिका को भी चैन से नहीं रहने दिया है। इग्लैण्ड में भी मूल अग्रेज जाति की दृष्टि से अन्य जातियों के नागरिकों के कारण समस्या अच्छा रग ला रही है। क्या इग्लैण्ड वालों को तीसरी नागरिकता के फैसले पर नहीं आना पडा ? आखिर ऐसा क्यों ? इस पर विचार न तो ये बुजुर्ग राजनेता करेंगे और न अमरता के ठेकेदार ये धर्म के अधिकारी करेंगे। इन सब पर विचार हम करेंगे जो युवा वर्ग के नाम से जाने जाते हैं। इस धरती को नया रूप नया शृगार हमें देना है। इसलिए हम सोचेंगे। चलो भारत में तो दुनियाँ कह देगी कि अलग-अलग धर्म जातियाँ गडबड करती हैं परन्तु युवा वर्ग की तरफ से हम पूछना चाहते हैं कि अरब और ईरान और मुस्लिम देश आपस में क्यों एक-दूसरे के खून के प्यासे हो रहे हैं ? विचार और रुचि और मान्यताओं के अन्तर को लेकर सैंकडों प्राणियों को खडे-खडे मौत के घाट क्यों उतारा जाता है ? यह सब शक्ति सतुलन का खेल मनुष्य के जीवन से क्यों खेला जा रहा है ? जब इसान ही इसान को सहन नहीं कर सकता एक-दूसरे की मानसिकता और सस्कारों से मेल नहीं खा सकता तो आज विश्व का मानव अपने आप को जगली शेर बघेरे और चीते से बेहतर अपने आपको सभ्य और सुसस्कृत कहने का ढोंग क्यों करता है ? इसलिये आइये आप और हम मिलकर एक नये युग का आह्वान करें जिसमें हथियारों की होड नहीं होगी। मुँह मे राम मोहम्मद ईसा और बगल मे छुरी नहीं होगी। हम आदमी को आदमी के रूप में जीने और मरने देना चाहते हैं- कुत्तो और कीडो की तरह जीना और मरना नहीं चाहते। इसके लिए एक ही उपाय है कि भावात्मक एकता को मानव मात्र के दृष्टिकोण से अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विश्व मानव के स्तर पर प्रतिष्ठा प्रदान करें। और यह काम कर सकेगा हमारा युवा वर्ग- केवल युवा वर्ग।

जय जवान !

दूसरा डिजाइन

इस सदन में उपस्थित सभी सदस्यों को मेरा यथायोग्य अभिवादन । आज विद्यमान अध्यक्ष और निर्णायकों के बीच हम यह विचार करने के लिए उपस्थित हुए हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय भावात्मक एकता और युवा वर्ग का क्या सम्बन्ध है और ऐसी माहन एकता के लिए युवा वर्ग ही क्यों लिया गया और यह वर्ग क्या कर सकता है ?

हमें सबसे पहले मनुष्य जीवन के इस तथ्य को स्वीकार करना होगा कि युवा अवस्था मात्र एक ऐसी अवस्था है जिसमें मनुष्य का निर्माण जैसा चाहो वैसा किया जा सकता है। आचार–विचार व्यवहार सब कुछ बनाया जा सकता है बदला जा सकता है। जबकि बचपन और बुढापा मनुष्य के जीवन को ऐसा अनोखा वरदान नहीं दे सकता।

अन्तर्राष्ट्रीय भावात्मक एकता का सीधा सम्बन्ध एक नयी धरती के नये धरातल से नये मनुष्य समाज के निर्माण से जुडा हुआ है। इसका सम्बन्ध एक ऐसे मानव समाज से जुडा है जो रूप रग धर्म जाति मत पन्थ वाद और यहाँ तक जन्मभूमि और मातृभूमि जैसे शब्दों की सीमा को भी लाघ कर केवल एक शब्द से जुड़ता है और वह शब्द है– इसान । अपनी विचारधारा में और सस्कारों में बुनियादी परिवर्तन करके और नये समाज की रचना का बीडा उठाना– किसी बच्चे बूढे द्वारा सभव नहीं होगा। यह बीडा तो युवा वर्ग ही उठा सकता है लेकिन इसके लिए युवा वर्ग को अपने आप में बहुत कुछ बदलना होगा।

एक तरफ हालत तो यह है कि हर देश व समाज का युवा वर्ग अपने–अपने देश की राजनीतिक जजीरों में जकडा हुआ दकियानूस राजनेताओं द्वारा भ्रमित होता हुआ और अपने–अपने धर्म के ठेकेदारों के हाथो बिकता हुआ अपनी सास गिन रहा है और दूसरी तरफ उसी युवा वर्ग से अन्तर्राष्ट्रीय भावात्मक एकता की बात कही जा रही है तो एक बार लगता है कि मानो युवा वर्ग को बच्चों की तरह बहलाया जा रहा है परात के पानी में सुन्दर सा चाँद दिखलाया जा रहा है।

लेकिन समय की रफ्तार हमें यह समझा रही है कि अब राष्ट्रीय एकता की सीढियाँ हमें अन्तर्राष्ट्रीय एकता की ओर ले जा रही हैं। आज मैक्सिको का भूकम्प हम भारतवासियों को कपा देता है तो भारत के भोपाल की लाखो लाशें और उनकी अर्थियाँ अमेरिका और रूस को उनके अर्थ का अनर्थ समझा रही हैं। आज देश और समाज तो दूर अकेला एक व्यक्ति भी धरती के किसी भी कोने में बसने वाले व्यक्ति से अपने आपको कटा हुआ अलग मानकर जी नहीं सकता। अत धर्म जाति के आधारों पर विषमता की बात करना तो बहुत दूर की बात होती जा रही है।

लेकिन ऐसे भावात्मक एकता के समाज की रचना करने के लिए हम युवा वर्ग वालों को 'एकला चलो रे का जीवन दर्शन अपनाना होगा क्योंकि इसमे इन सब शक्तिशाली ठेकेदारों से कोई मदद नहीं मिलने वाली है इसलिए इस सदन में आओ ! आप और हम मिलकर नये सिरे से नया सकल्प लेवें कि–

1 सबसे पहले हम युवा वर्ग के मानस को बुनियादी रूप से बदलें। इसके लिए घासलेटी फिल्मी साहित्य से अपने आपको बचावें। गम्भीर ऊँचे दर्जे का साहित्य पढें और समझें।

2 युवा वर्ग अपनी खुद की नादानियों और विवेकशून्य गतिविधियों पर रोक लगावें।

3 युवा वर्ग अपनी जिम्मेदारियों को समझें। स्वय अपने आपको समझें और परिवार के स्तर से राष्ट्र और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक अपनी जिम्मेदारियों को पहिचानें।

4 युवा वर्ग अन्तर्राष्ट्रीय सस्थाओं का परिचय प्राप्त करें उनकी गतिविधियों से अपने आपको जोड़े और अपने दैनिक जीवन का एक निश्चित समय ऐसी गतिविधियों के लिए हर कीमत पर निकालें और लगाए।

5 सबसे जयादा युवा वर्ग इस बात का ध्यान रखे कि जीवन की हिंसा तोड–फोड और नकारात्मक शक्तिया कहीं हमारी शक्तियों को गुमराह नहीं कर दें।

6 युवा वर्ग को यह भी सकल्प लेना होगा कि सरकार और समाज से किसी प्रकार के मुआवजे की आशा किये बगैर अपने पैरों पर खड़ा होना होगा यानि युवा वर्ग को अपनी शिक्षा–दीक्षा और शारीरिक शक्ति का निर्माण इस प्रकार करना होगा कि जिसके द्वारा अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व का निर्माण हो सके। अपनी आजीविका के लिए भी आत्मनिर्भर हो सके।

बहुत बडी ललकार युवा वर्ग के लिए है। इतना सब कुछ समव करके युवा वर्ग विश्व के स्तर पर सगठित होकर चलें तब कहीं जाकर इन भ्रमित करने वाले धर्म और राजनीति के ठेकेदारों से मुक्त होकर अन्तर्राष्ट्रीय भावात्मक एकता के महल को खडा करने के लिए युवा वर्ग नींव का पत्थर बन सकेगा।

(4)

इस सदन की राय में धर्म का राजनीति में हस्तक्षेप उचित है ।

विपक्ष

माननीय अध्यक्ष महोदय अतिथिगण गुरुजन वक्तागण और श्रोतागण। आप सभी को मेरा अभिवादन।

आज इस सदन में विषय के विपक्ष में मेरा खुला ऐलान है कि धर्म का राजनीति मे हस्तक्षेप अनुचित है– सर्वथा अनुचित। राजनीति की दाल–भात मे मूसलचद बनने का धर्म को न अधिकार है न आवश्यक। किन्तु फिर भी अनधिकत प्रयास अवाछनीय घुसपैठ और हस्तक्षेप मानव जाति के इतिहास में धर्म आज तक करता आया है कर रहा है और कब तक करता रहेगा– यह भविष्य का इतिहास बतलाएगा। इतिहास बतलायेगा जरूर किन्तु कभी क्षमा नहीं करेगा कभीऽ क्षमा नहीं करेगा। किनको ? भूत और प्रेत बनकर धर्म जिनके सिर पर सवार हो चुका है– उनको ॥

अध्यक्ष महोदय! इस सदन में आपके माध्यम से अपने विपक्षी वक्तागण से नम्र निवेदन है कि धर्म का भूत विवेक की शीशी में उतार कर दो घडी शात दिल–दिमाग से सोचें कि जो धर्म मनुष्य के विकास के नाम पर विनाश करता आया है जो धर्म आज तक इसानो के खून से खिल–खिलाकर खेलता आया है– उस धर्म का राजनीति मे हस्तक्षेप उचित मानना क्या अपने आप में एक विडम्बना नहीं होगी ? क्या यह मानव द्वारा मानव जाति की आत्महत्या का दोहराता हुआ इतिहास नहीं होगा ?

विश्व का इतिहास नकारना आत्मप्रवचना होगी। मानव को अपरिग्रह सिखलाने आया जैनधर्म। परिग्रह के पूजीवादी परकोटे से आज तक बाहर न खुद निकल सका और न हमें निकाल सका। दिगम्बर श्वेताम्बर तेरापथी बाईसपथी मंदिर मार्गी तपागच्छ खरतरगच्छ– न जाने कितने टुकडों में टूट–टूट कर बिखर–बिखर कर महावीर एक– जैनी अनेक– फिर भी आज भी विषमता की चिलम फूक कर ही समता का दम भर रहे हैं। मध्यम मार्ग सिखलाने आया बौद्ध धर्म। राजनीति मे हस्तक्षेप करके सदियों तक बना रहा राजधर्म। किन्तु महायान हीनयान वज्रयान सहजयान– न जाने कितने यान के वायुयान उडाता हुआ टुकडे–टुकडे होकर स्वय ही उड गया। उधर यूरोप में पोप की पोप लीलाओं ने राजनीति में हस्तक्षेप करके इसानों को अनीति के अधकार में अधा करके छोडा। ईसा एक– कैथोलिक और प्रोटेस्टेन्ट अनेक। यूरोप का इतिहास ईसाइयों के धर्म बनाम अधर्म का खूनी दस्तावेज है। ईसा के प्रेम के पुजारी अग्रेजो ने हिन्दुस्तान से 190 साल तक जो प्रेम किया उसका इतिहास सारी दुनियाँ जानती है। प्रेम सेवा शान्ति और परमपिता की कृपा के धनी ईसा के दावेदार ईसाई राजनीतिज्ञ जब हिरोशिमा और नागासाकी पर अपने प्रेम की वर्षा कर रहे थे उस समय जापान में गौतम बुद्ध और ईसा मसीह गले मिल–मिलकर रो रहे थे। अरब में मोहम्मद साहब के भाईचारे के (भ्रातृत्व के) शामियाने के नीचे इस्लाम एक– किन्तु शिया सुन्नी सूफी देवबन्द आदि मुसलमान अनेक। शियाओं और सुन्नियों का खूनी इतिहास तथा दुनियाँ की राजनीति में तोपों की गड़गडाहट और तलवारों की झनझनाहट के बल पर लिखा गया मुस्लिम इतिहास पढ कर भी यदि धर्म का हस्तक्षेप राजनीति में उचित है तो अनुचित की परिभाषा क्या होगी ? यह मेरे विपक्षी वक्तागण को अध्यक्ष महोदय ही समझा सकेंगे। जिस हिन्दू धर्म का राम कण–कण में विराजमान है वह गुम्बद में भी प्रकाशमान है। सियाराम मय सब जग जानी। तब अयोध्या में लड़ने की कैसे ठानी ?

सज्जनों। सदियों–सदियों का इतिहास बोल रहा है कि धर्म लगडा है उसने सदैव मनुष्यों के समाज में चलने के लिए राजनीति की बैशाखी का सहारा लिया है किन्तु इतना अपग है कि राजनीति की बैशाखी लेकर भी लडखडाता है और मनुष्य के समाज को अपने साथ गिरकर चकनाचूर होने के लिए मजबूर करता है। जो धर्म स्वय अवमूल्यित है वह राजनीति को मूल्यवान बनाने का दम भरता है ? नहीं वह छल और ढोंग करता है। जो धर्म स्व–अन्तर्विरोधी है– सैल्फ कन्ट्राडिक्टरी है– जो धर्म खुद अपनी एकता बन्धुता समानता और सत्यता की एकरूपता कायम नहीं रख सका– वह धर्म राजनीति की ओट में मनुष्य के समाज को एकता स्वतन्त्रता समानता बन्धुता और मानवीय अधिकारो की निश्चिन्तता कैसे दे सकता है ? राजनीति मनुष्य को व्यक्ति समाज और सरकार की त्रिवेणी के घाट पर सुख और सुरक्षा प्रदान करने का सकल्प लेकर सदियों–सदियों से अपना विकास करते–करते प्रजातन्त्र की आस्थाओं का अमृत भर कर मानव के इतिहास में स्वर्ग की देवी बनकर उतरना चाहती है किन्तु यह धर्म राजनीति में हस्तक्षेप करके 6 दिसम्बर 1992 तक दुनियाँ के इतिहास में हिंसा रक्तपात कत्लेआम घृणा प्रतिशोध इत्यादि के रूप में साक्षात् गरलपान करने के लिए हमें मजबूर करता रहा है। ऐसे धर्म का राजनीति में हस्तक्षेप किसी भी कीमत पर उचित नहीं कदापि नहीं॥

जय इसान।

तो क्या करना होगा ? इस वस्तुस्थिति से सलट और पलट कर उस लक्ष्य बोध की अवस्थिति तक पहुँचने के लिए ? दार्शनिकों धर्माचार्यों साहित्यकारों ने जो भावनात्मक आयाम दिये हैं उनमें महावीर और बुद्ध आत्मसयम प्रधान अपरिग्रह पर चले। उन्हीं की विरासत कबीर के मुख से बोली –

.... घर मे बाढै दाम।

दोऊ हाथ उलीचिये यही सज्जन को काम।।

तो उधर परिग्रह अपरिग्रह की सीमाओं को अपनी सधुक्कडी भाषा में मर्यादित किया –

साई इत्ता दीजिये जामैं कुटुम्ब समाय।

मैं भी भूखा ना रहूँ साधु ना भूखा जाय।।

गाँधी का अन्त्योदय और सर्वोदय भी स्वानुशासित ट्रस्टी शिप और पारलौकिक मान्यताओं से परे किसी अन्य लौकिक समाधान को प्रस्तुत नहीं कर सके। लौकिक समाधान की आवश्यकता इसलिये है क्योंकि वन्य पशुओं से लेकर तथाकथित धर्माचार्यों एव महामानवों तक पोषण सरक्षण और प्रशिक्षण के सर्वसामान्य सर्वसुलभ आयाम आज तक उपलब्ध नहीं हो सके। अत लोकतत्र की सही स्थापना नहीं हो सकी क्योंकि सतरी से लेकर मत्री तक पापात्मा से लेकर धर्मात्मा तक सब में बुनियादी प्राणितत्व मौजूद है जो धार्मिक दार्शनिक भाषा में प्राणियों को स्वानुशासित स्वमर्यादित तथा बिना किसी अकुश के सही अर्थों में अपरिग्रही एव आत्मसयमी नहीं बनने देते। परिणामस्वरूप आर्थिक विकास और प्रजातत्र की मूल भावनाएँ व अवधारणाएँ साकार नहीं हो पार्ती।

तब प्रश्न है कि लौकिक समाधान क्या है कहाँ है ? मेरा विनम्र निवेदन है कि यदि विपक्षी तर्क–कुतर्क और वितर्क में न उलझ कर सही व सुलझे हुए दृष्टिकोण से निर्णय लिया जाए तो इस सदन में सर्वसम्मति से स्वीकार किया जाना चाहिए कि सही आर्थिक विकास और सही लोकतत्र की स्थापना के लिये आर्थिक विकेन्द्रीकरण ही एक मात्र लौकिक समाधान की दशा और दिशा है।

आर्थिक विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया मे सवैधानिक अकुश और अनुशासन को गतिदायक शक्ति के रूप में स्वीकार किया गया है अर्थात् परिग्रह के बुनियादी रूप से दुराग्रही प्राणी को सरकार द्वारा लोक कल्याण हेतु परलोक के प्रलोभन के बिना इसी लोक में मर्यादित किया जावे। इस दिशा में भारत ने आज तक जो प्रयोग किये हैं और कदम बढ़ाये हैं वे आर्थिक विकेन्द्रीकरण की सार्थकता को सिद्ध कर रहे हैं।

बैंकों का राष्ट्रीयकरण इस दिशा का सर्वोत्तम कदम रहा। ट्रस्टी शिप परलोक सुधारने का त्यागमयी दान–पुण्य करने का कोई भी सिद्धान्त बैंकों के अधिपतियों द्वारा किसी खोमचे वाले को ऋण नहीं दिलवा सका। जबकि लौकिक सवैधानिक अकुश ने बैंक के परिग्रह को अपरिग्रह की दिशा मे अग्रसर कर दिया। अब भारत के सारे राष्ट्रीयकृत बैंक कबीर की भाषा में सज्जन बनकर बढे हुए दाम दोनो हाथो से उलीच रहे हैं।

कुटीर उद्योगों को प्रधानता देने वाले आर्थिक विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया ने दिल्ली कलकत्ता के वृहद् उद्योगपतियों की तुलना मे हमारे नन्हे से उपनगर गगाशहर

इस सदन की राय मे भारत में आर्थिक विकेन्द्रीकरण आर्थिक विकास के लिये ही नहीं बल्कि लोकतत्र के लिये भी आवश्यक है ।

पक्ष

उपस्थित श्रोतागण ! यथायोग्य अभिवादन के पश्चात् माननीय अध्यक्ष महोदय के माध्यम से 'भारत में आर्थिक विकेन्द्रीकरण आर्थिक विकास के लिए ही नहीं बल्कि लोकतत्र के लिये भी आवश्यक है' — इस विषय के पक्ष मे प्रबलता से समर्थनकारी तथ्य प्रस्तुत करने से पूर्व अपने विपक्षी वक्ताओं को आर्थिक विकास और प्रजातत्र की प्रचलित धारणाओ की ओर सकेत देना आवश्यक है।

श्रीमान् औद्योगिक क्राति युग से आज तक आर्थिक विकास की चरम सीमाओ को छू लेने वाले इग्लैण्ड और जर्मनी को भी जब बेकारी और बेरोजगारी से मुक्ति न मिल सकी उधर प्रजातत्र के नाम पर साम्यवादी प्रजातत्र पूजीवादी प्रजातत्र और समाजवादी प्रजातत्र और उनमें भी अनेक प्रकारान्तर सहित अन्त्योदयी प्रजातत्र आदि के नमूने मानव के चितन और चिरन्तन उपलब्धियों के गौरव पर एक बहुत बडा प्रश्नवाचक चिह्न लगा रहे हैं।

जब तक हम आर्थिक विकास और प्रजातत्र की मूल भावनाओं को समझ कर क्रियान्वित करने का उपाय नहीं करेंगे तब तक लक्ष्य सिद्धि सभव नहीं है। आर्थिक विकास का सीधा तात्पर्य यह है कि समग्र मानव समाज की व्यवस्था अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ऐसी बने कि हमारी दृष्टि की हर सभव सीमा में वन्य पशुओ पक्षियों से लेकर पालतू प्राणियों तक राजमहलो से लेकर राजमार्गों की तग गलियो तक कोई भी प्राणी सरक्षण पोषण और प्रशिक्षण की समसामयिक उपलब्धियों से वचित न रहे। ऐसी समाज व्यवस्था ही सही अर्थों मे आर्थिक विकास और लोकतत्र की दिशा व दशा का निर्माण कर सकती है।

किन्तु, वस्तुस्थिति यह है कि दूसरों को छोडकर अपनी ही देखें तो पैरों तले धरती खिसक रही है। नम्बर दो के अघोषित आकडे तो दूर रहे नम्बर एक के घोषित आकडे बोल रहे हैं कि चार हजार चार सौ पैंसठ करोड रुपया (जिसकी गणना की स्वप्न में भी कल्पना इस सदन में आर्थिक विषय पर विचार करने का दम भरने वालों की यानि आपकी और हमारी सीमा से कोसों दूर है)— ऐसा चार हजार चार सौ पैंसठ करोड रुपया केवल भारत के बीस बडे उद्योगपतियों की सम्पत्ति है। यह भी सन् 1975 तक की है अन्य राष्ट्रों के उद्योगपति तथा 1975 के बाद आज तक की वृद्धि इस आकडे से दूर है। कम्पनी मामलों के मत्री शान्ति भूषण के अनुसार टाटाओं की सपत्ति 1972 में छह सौ चौंतीस करोड रुपये थी जो 1975 में नौ सौ नौ करोड रुपये हो गई। इसी प्रकार बिडलाओं की सपत्ति चार सौ बहत्तर करोड से बढकर छह सौ पचास करोड रुपये हो गई। मफतलाल अपने दो सौ चवालीस करोड रुपये लेकर तीसरे नम्बर पर और सिघानिया दो सौ एक करोड रुपये से चौथे नम्बर पर हैं। देश के कुल बीस बडे घरानों की सपत्ति चार हजार चार सौ पैंसठ करोड रुपया है।

तो मैं अपने विपक्षी वक्ताओं से अध्यक्ष महोदय ! पूछना चाहती हूँ कि क्या यही आर्थिक विकास का सोपान है जो लोकतात्रिक प्रणाली की उपलब्धि है ?

तो क्या करना होगा ? इस वस्तुस्थिति से सलट और पलट कर उस लक्ष्य बोध की अवस्थिति तक पहुँचने के लिए ? दार्शनिको धर्माचार्यों साहित्यकारो ने जो भावनात्मक आयाम दिये हैं उनमें महावीर और बुद्ध आत्मसयम प्रधान अपरिग्रह पर चले। उन्हीं की विरासत कबीर के मुख से बोली –

.. .. घर मे बाढै दाम।

दोऊ हाथ उलीचिये यही सज्जन को काम।।

तो उधर परिग्रह अपरिग्रह की सीमाओं को अपनी सधुक्कडी भाषा मे मर्यादित किया –

साईं इत्ता दीजिये जामैं कुटुम्ब समाय।

मैं भी भूखा ना रहूँ साधु ना भूखा जाय।।

गाँधी का अन्त्योदय और सर्वोदय भी स्वानुशासित ट्रस्टी शिप और पारलौकिक मान्यताओं से परे किसी अन्य लौकिक समाधान को प्रस्तुत नहीं कर सके। लौकिक समाधान की आवश्यकता इसलिये है क्योंकि वन्य पशुओं से लेकर तथाकथित धर्माचार्यों एव महामानवों तक पोषण सरक्षण और प्रशिक्षण के सर्वसामान्य सर्वसुलभ आयाम आज तक उपलब्ध नहीं हो सके। अत लोकतत्र की सही स्थापना नहीं हो सकी क्योंकि सतरी से लेकर मत्री तक पापात्मा से लेकर धर्मात्मा तक सब में बुनियादी प्राणितत्व मौजूद है जो धार्मिक दार्शनिक भाषा में प्राणियों को स्वानुशासित स्वमर्यादित तथा बिना किसी अकुश के सही अर्थों में अपरिग्रही एव आत्मसयमी नहीं बनने देते। परिणामस्वरूप आर्थिक विकास और प्रजातत्र की मूल भावनाएँ व अवधारणाएँ साकार नहीं हो पातीं।

तब प्रश्न है कि लौकिक समाधान क्या है कहाँ है ? मेरा विनम्र निवेदन है कि यदि विपक्षी तर्क–कुतर्क और वितर्क में न उलझ कर सही व सुलझे हुए दृष्टिकोण से निर्णय लिया जाए तो इस सदन मे सर्वसम्मति से स्वीकार किया जाना चाहिए कि सही आर्थिक विकास और सही लोकतत्र की स्थापना के लिये आर्थिक विकेन्द्रीकरण ही एक मात्र लौकिक समाधान की दशा और दिशा है।

आर्थिक विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया में सवैधानिक अकुश और अनुशासन को गतिदायक शक्ति के रूप मे स्वीकार किया गया है अर्थात् परिग्रह के बुनियादी रूप से दुराग्रही प्राणी को सरकार द्वारा लोक कल्याण हेतु परलोक के प्रलोभन के बिना इसी लोक में मर्यादित किया जावे। इस दिशा में भारत ने आज तक जो प्रयोग किये हैं और कदम बढाये हैं वे आर्थिक विकेन्द्रीकरण की सार्थकता को सिद्ध कर रहे हैं।

बैंकों का राष्ट्रीयकरण इस दिशा का सर्वोत्तम कदम रहा। ट्रस्टी शिप परलोक सुधारने का त्यागमयी दान–पुण्य करने का कोई भी सिद्धान्त बैंकों के अधिपतियो द्वारा किसी खोमचे वाले को ऋण नहीं दिलवा सका। जबकि लौकिक सवैधानिक अकुश ने बैंक के परिग्रह को अपरिग्रह की दिशा मे अग्रसर कर दिया। अब भारत के सारे राष्ट्रीयकृत बैंक कबीर की भाषा में सज्जन बनकर बढे हुए दाम दोनो हाथो से उलीच रहे हैं।

कुटीर उद्योगो को प्रधानता देने वाले आर्थिक विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया ने दिल्ली कलकत्ता के वृहद् उद्योगपतियों की तुलना में हमारे नन्हें से उपनगर गगाशहर

के पापड़–भुजिया के उद्योगपति को राष्ट्रीयकृत बैंक की पचहत्तर हजार रुपये की लिमिट प्रदान करवाने में सफल कर दिया है।

न्यूनतम वेतन नीति भी आर्थिक विकेन्द्रीकरण की लोकतान्त्रिक प्रक्रिया का जयघोष कर रही है। ग्राम विकास और ग्रामाभिमुख योजनाएँ हमारे आर्थिक विकेन्द्रीकरण की ही सार्थकता को सिद्ध कर रही है। भारत के सन्दर्भों में इतने ही नहीं बल्कि अन्य अनेक कदम भी आर्थिक विकेन्द्रीकरण की सार्थकता को सिद्ध कर रहे हैं।

अत मेरा निवेदन है कि अध्यक्ष महोदय के निष्पक्ष माध्यम द्वारा आज यह सदन एक मत होकर निर्णय ले कि आर्थिक विकेन्द्रीकरण आर्थिक विकास के लिए ही नहीं बल्कि लोकतन्त्र के लिए भी आवश्यक है क्योंकि सही व सच्चे लोकतन्त्र के सरक्षण पोषण और प्रशिक्षण के लिए जिस नागरिक की आवश्यकता है उस नागरिक का भी सरक्षण पोषण और प्रशिक्षण उपयुक्त आर्थिक विकास पर ही आधारित है जिसके लिए आर्थिक विकेन्द्रीकरण से बढकर अन्य कोई लौकिक समाधान नहीं हो सकता।

(6)

इस सदन की राय में समाज के बदलते परिवेश नैतिक मूल्यों के हास के लिए जिम्मेदार हैं ।

विपक्ष

इस सदन में उपस्थित गुरुजन अतिथिगण और छात्रा समुदाय ! आप सबको मेरा अभिवादन ! सदन के आदरणीय अध्यक्षजी के माध्यम से मैं विपक्ष में अपने विचार रखना चाहती हूँ। प्रिय बहिनो ! इस धरती पर मनुष्य के जीवन में व्यक्ति और समाज का सम्बन्ध व्यक्ति और समाज के बीच आचार–विचार और व्यवहार का अनुबध आदि–अनादि काल से नैतिकता और अनैतिकता की दो धारों पर जीता आया है पलता आया है और पलता चलता रहेगा। ये दोनों धारें इतनी तेज और तीखी हैं और इतनी सूक्ष्म हैं कि पल भर मे व्यक्ति और समाज या तो इस धार पर या उस धार पर ! चूकि यह धार बडी पैनी है अत इस धार पर चढते ही व्यक्ति और समाज किसी एक प्रकार की स्थिति मे एक ही प्रकार की मुद्रा में रह नहीं सकता। इसीलिए समाज का परिवेश बदलता रहता है। किन्तु मनुष्य की तपन–तडपन चुभन और उसकी बेचैनी उसे निरन्तर नैतिकता की धार पर चलाये रखती है दौडाये रखती है और यह महसूस करवाये रखती है कि चरैवेति चरैवेति चरैवेति ! यही कारण है कि आगे ही आगे चलते रहने बढते रहने की अन्त प्रेरणा मनुष्य में एक आशा एक विश्वास और एक एहसास जगाये रखती है जो नैतिक मूल्यों का हास होने ही नहीं देती बल्कि निरन्तर विकास करती रहती है– विकास !

समाज का परिवेश सदैव परिवर्तनशील रहा करता है। अत परिवेश बदलते रहना समाज की अनिवार्य दशा और दिशा है। किन्तु नैतिक मूल्यों की भी शाश्वत प्रकृति है कि जैसे–जैसे समाज का परिवेश बदलता है वैसे–वैसे नैतिक मूल्यों की अमर बेल और अधिक अधिक से अधिक दिन दूनी रात चौगुनी फैलती है विकसित होती है। नैतिक मूल्य ऐसा सोना है जो अनैतिकता के भीषण अग्नि परिवेश में भी तपकर अपने अस्तित्व

और व्यक्तित्व में चौगुनी चमक निखार लेता है ! कदाचित् यही कारण है हमारे भारत के ऋषियों मुनियों ने सदैव उद्घोष किया है जयघोष किया है कि 'सत्यमेव जयते' अर्थात् नैतिक मूल्य तिरोहित नहीं हो सकते उनका विनाश नहीं हो सकता उनका अवसान नहीं होता बल्कि नैतिक मूल्य निरन्तर विकासमान रहते हैं– विकासमान !

वृन्द कहते हैं–

'ज्यों–ज्यों कचन ताइये।
त्यों–त्यों निरमल जान।।

रामधारी सिंह दिनकर पाडवों की भूमिका में लिखते हैं–

'जो लाक्षागृह में जलते हैं।
वे ही सूरमा निकलते हैं।।

ईसा को शूली गाँधी को गोली मीरा और सुकरात को जहर समाज के बदलते परिवेशों में मिले लेकिन नैतिक मूल्यों का हास नहीं हुआ। समाज के बदलते परिवेश में नैतिक मूल्यों का समावेश घनीभूत होता चला गया। इतिहास इसका साक्षी है और यदि मेरे विपक्षी विचारक जिनका दृष्टिकोण ही नकारात्मक और निराशावादी बन चुका है– उन्हें यदि यह सकारात्मक आशावादी दृष्टिकोण प्रेरित नहीं कर सका तो अध्यक्ष महोदय से मेरा विनम्र निवेदन है कि मेरे इन विपक्षियों को मानव जाति के इतिहास के उतार–चढाव को फिर से देखने पढने और समझने की सलाह प्रदान करें जिससे इनका दृष्टिकोण उलझे नहीं बल्कि सुलझे। इस सदन के एक–एक श्रोता से मेरा अनुरोध है कि समाज में आतकवाद नक्सलवाद तथा घूसखोरी कालाबाजारी मुनाफाखोरी अनाचार भ्रष्टाचार बलात्कार आदि की अखबारी खबरें पढ–पढकर जिन वक्ताओं को नैतिक मूल्यो का हास नजर आ रहा है उनकी आखों का चश्मा उतार कर आप न पहन लें। विषय के पक्ष में बोलने वाले वक्ताओं को इतना ज्ञान तो होगा और होना ही चाहिए कि बढते हुए फैलते हुए रोग के लक्षण रोग और यहाँ तक कि महामारी का यह मतलब नहीं होता कि जीवन में स्वास्थ्य नियमों आरोग्य के विधि–विधानों और औषधि के प्रभावों का ही हास हो गया ? बढ़ते हुए रोगों ने औषधि विज्ञान का विकास ही किया है हास नहीं। ठीक इसी प्रकार समूचे विश्व के बदलते परिवेश में नैतिक मूल्यों का हास कहीं भी नजर नहीं आता ! दो विश्व युद्धों के घोर अनैतिक परिवेश ने सयुक्त राष्ट्र सघ को जन्म दिया उसका विकास किया और आज विश्व बैंक विश्व स्वास्थ्य सगठन विश्व शाति सेना विश्व प्रौढ शिक्षा सगठन आदि के रूप में माने हुए क्रियाकलाप मानव की नैतिक मूल्यों के प्रति आस्था का नैतिक मूल्यों के विकास और विश्वास का डका बजा रहे हैं किन्तु मुझे इन पक्षवक्ता बहनों पर तरस आ रहा है कि उस डके की बुलन्द आवाज से भी उनके कानो में जूँ तक नहीं रेंगी और वे सर्वथा विपरीत निष्कर्ष निकालकर स्वय को और सदन को भ्रमित कर रही हैं।

अध्यक्ष महोदय ! मैं इस सदन मे एक जबर्दस्त तथ्य और तर्क पेश करना चाहती हूँ कि इस समूचे विश्व में अमरीका और रूस से बढकर समाज के बदलते परिवेशों का प्रमाण और क्या हो सकेगा ? स्टारवार और चन्द्रमा पर दौडती हुई कार के स्वप्न

में जीने वाले परिवेश के बावजूद दिनाक 9 दिसम्बर 1988 का दिन नैतिक मूल्यों के हास का नहीं बल्कि विकास के आभास और प्रकाश का दिन था जब रीगन और गोरबाच्योव ने हाथ मिलाया। एक दूसरे को गले लगाया। उस दिन पूजीवाद और साम्यवाद अपने सारे अनैतिक परिवेश से निकलकर हाथ मिला रहे थे मानो शाति अहिंसा और मानववाद को झुककर सलाम कर रहे थे। आण्विक हथियारों में कटौती और लाखों सैनिकों को खेती व उद्योगों में काम पर लगा देने की घोषणाए नैतिक मूल्यों के हास की नहीं बल्कि आभास की घोषणाए हैं। यह आभास समाज का बदलता परिवेश हमें दे रहा है।

अन्त में इस सदन में उपस्थित सभी श्रोताओं से मेरा अनुरोध है कि मेरे स्वर मे स्वर मिलाकर आवाज को बुलद कर घोषित करें कि समाज के बदलते परिवेश में नैतिक मूल्यों का हास नहीं हो रहा है बिल्कुल नहीं हो रहा है।

जय हिन्द !

(7)

(प्रस्तुत विषय वाद विवाद का नहीं है बल्कि किसी शाला पत्रिका में लेख के रूप में एक छात्र को लिखवाई गयी सामग्री है किन्तु प्रस्तुत तर्क और प्रस्तुतीकरण का स्टाइल समझने लायक है लेखक)

विषय वर्तमान सदर्भ में अध्यापक और विद्यार्थी के सम्बन्ध

शाश्वत सम्बन्ध

अध्यापक और विद्यार्थी के सम्बन्ध शाश्वत सम्बन्ध हैं। देश काल की सीमा से परे हैं परन्तु फिर भी यदि वर्तमान सन्दर्भ में अध्यापक और विद्यार्थी के सम्बन्ध को हमें देखना है तो उसे तनिक अतीत में भी झाककर देखना होगा। तुलनात्मक दर्शन करने से ही यह सम्बन्ध भली–भाति दिखाई देगा।

सम्बन्ध धरातल पर अगूठा काटेगा नहीं दिखायेगा !

हमारे भारत की सस्कृति के दावेदार तथा ठेकेदार महाभारत काल के एकलव्य के कटे अँगूठे की दुहाई देकर गुरुर्देवो महेश्वर कहकर गुरु और शिष्य के सम्बन्ध को सातवें आसमान पर चढाना चाहते हैं लेकिन वर्तमान सन्दर्भों में यह सम्बन्ध इतना धरातल पर आ चुका है कि न तो नभ तल की बात सोचने लायक है न रसातल की विचारने लायक ! आज गुरु बनाम अध्यापक न तो देव रहा न महेश्वर और न आज का शिष्य एकलव्य रहा जो थोथी भावनाओं के बहाव में बहता हुआ अँगूठा काटकर दे दे ! हाँ ओजस्विता और तेजस्विता और ज्ञान की गरिमा और आचरण की महिमा से गिरे हुए गुरु को गौरव के साथ आज का शिष्य अपना अँगूठा नि सकोच दिखला देगा।

राजनैतिक प्रभाव की प्रमुखता

मानव के व्यक्तिगत पारिवारिक सामाजिक धार्मिक आर्थिक और राजनैतिक सब तरह के सम्बन्ध समय की गति के साथ गतिशील होते हैं किन्तु मानव का इतिहास यह बतला रहा है कि राजनैतिक सम्बन्धों ने हर युग में हर काल में मानव के हर सम्बन्ध को अपने अनुसार बदल जाने के लिए मज्बूर किया है। यही कारण है कि अध्यापक और शिष्य का शाश्वत सम्बन्ध भी राजनैतिक परिस्थितियों के हर बदलते रग में बदलने के

लिए मज्बूर हुआ है और मज्बूर है। बस यही मजबूरी इस शाश्वत सम्बन्ध को सातवें आसमान से उतार कर धरातल पर ले आई है।

मानव मानव के बीच जीवन जीने का सम्बन्ध

केवल भारत ही नहीं बल्कि चीन जर्मनी लका अफगानिस्तान बर्मा अफ्रीका और अनेक देशों मे जो भीतर–भीतर आग सुलग रही है जो बेचैनी सता रही है– इन सब सन्दर्भों में रूस और अमेरिका ने जो करवट बदली है इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए वर्तमान सम्बन्ध एक ही नजर आता है वह है मानव–मानव के बीच जीवन जीने का सम्बन्ध। रोटी–रोजी कपड़ा मकान और स्वास्थ्य की बुनियादी परेशानियों से परेशान आज का आदमी शिक्षा और शिक्षक को भी इन्हीं परेशानियों की नजर से देखेगा।

प्रत्यक्ष नहीं परोक्ष सम्बन्ध

इसीलिए इतने बडे विषय को सक्षेप में समेटकर हमें बिना आत्मप्रवचना के यह समझ लेना चाहिए कि अध्यापक और शिष्य का वर्तमान सम्बन्ध ठोस धरातल पर आधारित होगा और प्रत्यक्ष नहीं होकर परोक्ष होगा। चूकि वर्तमान रोटी रोजी कपड़ा और मकान से जुडी हुई परेशानियाँ न तो गुरु को देव बनने देंगी न शिष्य को एकलव्य बनने देगी क्योंकि आखिर अध्यापक भी हाड–माँस का पुतला ही तो है। अपनी कमजोरियों से मुक्त नहीं हो सकता और कमजोरियाँ शिष्य को प्रभावित नहीं कर सकती। इसलिए वर्तमान सदर्भ में भागती हुई जिन्दगी की इक्कीसवीं सदी का अध्यापक– शिष्य सम्बन्ध हर हालत में परोक्ष सम्बन्ध होगा यानि टी वी कम्प्यूटर टेप और पत्राचार पाठ्यक्रम द्वारा सचालित होगा। अत अध्यापक की प्रत्यक्ष कमजोरियों से दूर रहेगा। इसी स्थिति में शिष्य भावनात्मक रूप से जुडेगा और अपने शाश्वत सम्बन्ध को इस परोक्ष तरीके से सफल करेगा।

(8)

बालक को सुधारने के लिए सजा आवश्यक है

(इस विषय पर वाद विवाद यानि डिबेट की तरह की सामग्री नहीं दी जा रही है बल्कि दो डिजाइनों से विचार को विश्लेषित किया जा रहा है। प्रस्तुतीकरण पर ध्यान दिया जाय लेखक)

पहला डिजाइन

बालक को सुधारने के लिए सजा आवश्यक है– इस वाक्य पर हमें तनिक उदारता से सोचने की आवश्यकता है। सुधारने का तात्पर्य यह है कि हमें अमर्यादित बालक को मर्यादित करना है। अनुशासन की सीमाओं में बाधना है।

अनुशासन निर्माण करने की दिशा में तीन प्रक्रियाओ को आज तक स्वीकार किया गया है –

1 वातावरण या व्यवस्था
2 भय तथा प्रेम
3 अभ्यास

मानव का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने पर यह तथ्य निर्विवाद रूप से समाने आया है कि भय तथा प्रेम के आधार पर एक सुनिश्चित व्यवस्था में वातावरण में नियमित अभ्यास

देने पर सयमित आचरण का निर्माण होता है। अत इस दिशा मे विचार करने पर हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि किसी न किसी रूप में शारीरिक मानसिक अथवा आर्थिक अन्यथा पारमार्थिक भय या लोभ के आधार पर ही निर्बुद्धि प्राणियों से लेकर प्रबुद्ध प्राणियों तक को अनुशासित किया जाता रहा है।

अतीत से वर्तमान तक के इस अनुभूत प्रयोग के आधार पर हमें यह समझना चाहिए कि सुधारने की दिशा मे सजा आवश्यक है– इसका अर्थ यह है कि सुधारने की दिशा में भय तथा प्रलोभन की जितनी आनुपातिक मात्रा की आवश्यकता है वह प्रदान करनी ही होगी अन्यथा अनुशासन का निर्माण नहीं होगा।

समाज के बडे स्तर पर ईश्वर का भय परलोक का चिन्तन परमार्थ का ध्यान– क्या अपने आप में एक प्रकार का बौद्धिक भय प्रलोभन तथा मानसिक सजा व प्रायश्चित नहीं है ? तब फिर हम सजा शब्द से भडकते क्यों हैं ?

सजा का तात्पर्य यह है कि प्राणिमात्र को (पशु पक्षी से लेकर मानव तक) *अनुशासित जीवनयापन करने के लिए दी जाने वाली आवश्यक 'डोज । डॉक्टर की* कडवी दवा तथा जहर भी मरीज के लिए सजा होती है किन्तु वह सजा मरीज के स्वास्थ्य का निर्माण करती है विनाश नहीं।

बस इसी दिशा में हमें 'सजा शब्द को समझना होगा तथा सजा के मर्यादित स्वरूप को समझते हुए मानव के मर्यादित स्वरूप का निर्माण करना होगा। यशोदा का वात्सल्य हमारी सस्कृति की निधि है न ! तनिक विचारिये तो सही कि यशोदा की सजाएँ कृष्ण के लिये आवश्यक थीं या नहीं ? यह प्रत्येक साहित्य का जानकार समझता है।

बस ऐसी ही वात्सल्य भरी सजा बालक को सुधारने के लिए आवश्यक है। यही सजा वात्सल्य मय बनकर समाज और राष्ट्र के स्तर पर भी आवश्यक है। हाँ यह बात अवश्य है कि हिंसक (वायोलेण्ट) और अहिसक (नॉन वायोलेण्ट) जीवन दर्शन के आधार पर सजाओं *का स्वरूप अवश्य बदलता रहेगा। गाधीजी का अनशन समाज को सुधारने* के लिए अहिंसक सजा कही जा सकती है।

कस्तूरबा को ऐसी सजाए देकर गाधीजी ने अपने अनुकूल कर लिया था।

अत सजा शब्द को खुले दिमाग से समझने की जरूरत है। फिर आज के युग मे भी यदि हम सजा आवश्यक समझते हैं तो यह उस बालक का दुर्भाग्य नहीं बल्कि हम बुद्धिवादी कहलाने का दभ भरने वालो की बौद्धिक वर्णसकरता है।

अत हमें पहले इस बुनियादी जीवन दर्शन का ही निर्णय करना होगा और यह स्वीकार करना होगा कि हमें यदि सुधार करना है नई पीढी का निर्माण करना है तो वह सभव है– शिक्षण से विचार से सवाद से।

इस आस्था पर आस्थान्वित होने के बाद हम विचार करें कि आखिर बालक को सजा देने *की आवश्यकता क्यों है ? हम बालक को दोषी सिद्ध करते हैं तभी न !* बालक की उद्दण्डता उसे सजा दिलवाती है या पढाई में मन न लगने पर अथवा मन्द बुद्धि तथा इच्छा के अनुसार कार्य न करने पर वह सजा का पात्र बनता है। वस्तुत वह उद्दण्डता है क्या ? बालक की **उद्दण्डता की परिभाषा सुनिये 'तथाकथित बड़ों की**

अधीरता असहिष्णुता मानव स्वभाव की बारीकियों से अनभिज्ञता सकारात्मक दर्शन की रिक्तता बालक की शक्ति व दिशा को पहचानने की अयोग्यता बालक को चैनेलाइज करने के लिये समय व साधनों की असमर्थता--यानि हमारी खुद की ही इन कमजोरियों की ओट कहलाती है-- बालक की उद्दण्डता !

अनेक दैनिक उदाहरणों द्वारा यह स्पष्ट किया जा सकता है।

मूल तथ्य यह है कि हम मानव के पितृस्वरूप बालक को क्या बनाना चाहते हैं ? इतिहास के उदाहरण हमारे सामने आ चुके हैं। यदि हमें हिसक मानव का निर्माण करते रहना है तो 'सजा को बुनियादी आवश्यकता अवश्य स्वीकार करिये अन्यथा सुसस्कृत रचनात्मक मानव पीढी का निर्माण करने के लिए हमे आचार--विचार मे आमूल--चूल परिवर्तन करके अहिंसक (नॉनवायोलेण्ट) आचार--विचार व्यवहार पर नई पीढी को ढालना होगा।

दूसरा डिजाइन

'सजा' आवश्यक है---- ऐसा कहने का या स्वीकार करने का यह अर्थ है कि सजा को हमने बालक के सुधारने के लिए 'विधान' के रूप में स्वीकार कर लिया 'विधि के रूप में नहीं। यदि सजा विधि के रूप में स्वीकार की जाती तो परिवार से लेकर शाला तथा राष्ट्र से लेकर अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओ तक बालक तो क्या बालक के पितृस्वरूप मानव के जीवन दर्शन में भी एक बहुत बडा परिवर्तन आ जाता। एक ऐसा परिवर्तन आ जाता जो केवल दर्शन शास्त्र का विषय या एक एकाकी व्यक्ति के आचार--विचार का विषय नहीं बल्कि सपूर्ण मानव समाज का व्यावहारिक विषय बन जाता।

"बालक को सुधारने के लिए सजा आवश्यक है --- इस वाक्य की रग--रग से मानव की उस उग्र (Violent) प्रवृत्ति की गन्ध आ रही है --- मानव की उस अधिनायक प्रवृत्ति की बदबू आ रही है कि जिसने मानव समाज को सदैव बर्बर बनाये रखा हिसक पशु का नवीनतम सस्करण बनाये रखा। इसी तथ्य को और भी स्पष्ट करने के लिए कहा जा सकता है कि छोटे से लेकर बडे स्तर तक जब मानव अपने सहमानव को अपने अनुकूल परिवर्तित नहीं कर पाता तब परिवर्तित करने का यह स्वाभाविक आग्रह 'मानव को मज्बूर करता है कि वह सहमानव को अपनी रूचि की दिशा मे ढालने के लिए 'सजा' दे अर्थात् बल प्रयोग करे अर्थात् साम--दाम--दण्ड--भेद की कूटनीति का प्रयोग करे किन्तु येन केन प्रकारेण सहमानव को अपने अनुकूल कर ले। यह आग्रह ही अधिनायकता का मूल है मानवीय स्वतन्त्रता की मजिल के लिए दिशा शूल है। बालक को सुधारने का तात्पर्य परोक्ष--अपरोक्ष रूप में क्या यह नहीं है कि सुधार और बिगाड के जो मानदण्ड और जीवन मूल्य युग के सन्दर्भ मे हमने अपने मस्तिष्क में बना रखे हैं उनको ही नई पीढी पर थोपना चाहते हैं यानि हम अपनी आज की दृष्टि से उन्हें सुधारना चाहते हैं चाहे वह आने वाले कल की दृष्टि में बिगाड़ना सिद्ध हो सकता हो। तब फिर सुध ार और बिगाड के 'ध्रुवसत्य' नहीं बल्कि 'आपेक्षिक सत्य' की स्थापना की दिशा में यदि 'सजा आवश्यक है तब कहिये न ! कि हिटलर और मुसोलिनी ने जो कुछ किया वह ठीक किया क्योंकि वे बिगडे हुए (उनकी दृष्टि में बिगड़े हुए) जर्मनी को सुधारना चाहते

थे तब यह भी मानिये न ! कि अमेरिका भी वियतनाम को सुधारने के लिए जो कुछ कर रहा था वह भी ठीक कर रहा था फिर यह भी स्वीकार करने में हमें ऐतराज नहीं होना चाहिए कि औरंगजेब मौहम्मद तुगलक तैमूर लंग शाहशाहों तथा अंग्रेज वायसरायों ने भी जो कुछ सुधारने के लिए किया वह ठीक किया। फिर अशोक ने कलिंग को सुधारने के लिए कलिंग को सजा दी तो क्या गुनाह किया।

इतिहास के अतीत और वर्तमान की ये गहराइयाँ हमे ललकार कर पूछ रही हैं कि 'सुधारने और बिगाडने की प्रक्रियाओं में सजा का प्रयोग छल–बल का प्रयोग लोभ–पुरस्कार (प्रच्छन्न सजा) का प्रयोग यदि आवश्यक है तो अशोक को आत्मग्लानि का एहसास क्यों हुआ ? अंगुलीमाल का सुधार बुद्ध के बुद्धत्व से क्यो हुआ ? वाल्मीकि डाकू ऋषि कैसे बना ?

तात्पर्य यह है कि बालक को सुधारने की दिशा मे सजा का प्रयोग आवश्यक कहना हमारे सम्पूर्ण जीवन दर्शन की प्रतिछाया है। दैनिक जीवन में घर–परिवार जाति–समाज देश–विदेश इन सभी बडे स्तरों पर हमारा आचार–विचार तथा जीवन दर्शन ही छोटे स्तर पर बालक को सुधारने के लिए विधि–विधान का वरण करता है।

इति श्री

□□

इस प्रकार मैंने शालायी मंच पर अभिव्यक्ति को तराशने के लिए कुछ नमूने प्रस्तुत किये हैं किन्तु निवेदन है कि इन लेखों में 'डिबेटिंग स्टाइल' को समझा जावे भाषण शुरू करने व देते समय सम्बोधन के तौर–तरीकों को समझा जावे लेकिन इन लेखों से मेरी विचारधारा को नहीं जोड़ा जावे। इन वाद–विवादी लेखों में प्रकट किये गये विचारों से मेरी सहमति आवश्यक नहीं है। साथ ही साथ यह सामग्री अपने–अपने समय की वाद–विवाद प्रतियोगिताओं की रही है। अतः उस समय के सन्दर्भों को ध्यान में रखते हुए इन्हें पढा जावे। –लेखक

मेरी शैक्षिक परियोजनाए (My Educational Projects)

1 शैक्षिक पर्वोत्सव परियोजना (Educational Parvotsav Project)
   (a) वार्ताओं की तीन ऑडियो कैसेट – रावल (Three Audio cassettes of Talks Rawal)
   (b) एक सत्र पर्यन्त प्रयोग की फाइल (Documented file of one session experiment)
   (c) कटिंग्स तथा अन्य अभिलेख (Cuttings and Other records)
   (d) व्यक्ति की तलाश – पुस्तक – रावल (Vyakti ki Talash Book Rawal)
2 हस्तलेखन परियोजना (हिन्दी व अंग्रेजी) (Hand writing Project (Hindi & English))
   (a) वीडियो कैसेट (1½ घ) (Video Cassette (1½ Hrs))
   (b) प्रयोग अभिलेख एल्बम (Experiments Record Album)
   (c) प्रशिक्षण व प्रदर्शन हेतु जीरोक्स प्रतियाँ (Zerox copies for Training & Display)
3 'पहले पीरियड से पहले' परियोजना वीडियो कैसेट (1½ घ) (Before First Period Project Video Casset (1½ Hrs))
   (a) शून्य कालाश परियोजना (15 मि) (Zero Period Project (15 Min.))
   (b) प्रार्थना प्रारूप परियोजना (15 मि) (Prayer Setting Project (15 Min))
   (c) ध्यान का विद्यालयीकरण (15 मि) (Schoolisation of Meditation (15 Min.))
   (d) वीडियो प्रदर्शन कार्यक्रम (15 मि) (Video Presentation Progamme (15 Min.))
   (e) परियोजना स्पष्टीकरण (15 मि) (Project Specification (15 Min.))
4 दिवा–आवासी विद्यालय परियोजना (Day Boarding School Project)
   (a) शिक्षा स्वय एक मिशन–पुस्तक–रावल (Shiksha Swayam Ek Mission-Book Rawal)
   (b) एक सत्र पर्यन्त प्रयोग अभिलेख (One Session Experiment Record)
   (c) समय सारिणी का प्रारूप – रावल (Design of Day Boarding Time Table Rawal)
5 नैतिक शिक्षण राष्ट्रीय चारित्र्य एव भावनात्मक एकता परियोजना (Moral Education, National Character & Emotional Integration Project)
   (a) स्वतन्त्रता सन्दर्भ – एक प्रयोग (Freedom Reference An Experiment)
   (b) शिक्षण में मेरे प्रयोग–पुस्तक–रावल (Shikshan Men Mere Prayoga Book Rawal)
   (c) प्रातःकालीन प्रारूप – एक प्रयोग (Morning set up An Experiment)
   (d) सत्य और शक्ति – पुस्तक – रावल (Satya Aur Shakti Book Rawal)
   (e) अनैतिकता उन्मूलन प्रक्रिया–चार्ट–रावल (Anetikta Unmulan Prakriya-Chart Rawal)
6 शिशु–शिक्षण परियोजना (Nursery Education Project)
   (a) प्रयोग – सफल समय सारिणी (Successfully Experimented Time Table)
   (b) सामूहिक – अध्यापन तकनीक (Mass dealing Teaching Technique)
   (c) वजन मुक्त पाठ्यक्रम व्यवस्था (Exertion Less Syllabus Setting)
   (d) क्रियाशील उपकरण युक्त शिक्षण – चार्ट (Action Oriented Education through Apparatus Chart)
   (e) इनडोर मिनि स्टेडियम (Indoor Mini Stadium)
7 पुस्तकालय एव वाचनालय परियोजना (Library & Reading Room Project)
   (a) सरलतम पुस्तक वर्गीकरण (Easiest Books - Catogorisation)

(b) न्यूनतम खर्च में पुस्तकालय व्यवस्था (Library setting within minimum Budget)
(c) खुला-पुस्तकालय परियोजना (Open Library Project)
(d) न्यूनतम खर्च मे वाचनालय (Reading Room with Minimum Budget)

8 'शिक्षण विधि के आठ कदम' परियोजना (Eight steps in Teaching Method Project)
(a) आठ कदम युक्त शिक्षण विधि अभिलेख – रावल (Eight steps Teaching Method Article Rawal)
(b) शिक्षण विधि की प्रयोग-अनुभूतियाँ-वीडियो (Teaching Methods and Experimental Expressions Video)

9 लिखित कार्य जाँच एव निरीक्षण परियोजना (Written work correction & Inspection Project)
(a) इस विषय पर विभिन्न आलेख- रावल (Different Articles on the subject Rawal)
(b) जाँच और निरीक्षण के बिन्दुवार प्रोफॉर्मा-रावल (Pointwise proforma for correction and inspection Rawal)
(c) जीरोक्स प्रतियाँ व अभिलेख (Zerox copies and documents)

10 वाद-विवाद एव वक्तृत्व कला परियोजना (Debate & Speech Project)
(a) शिक्षण मे मेरे प्रयोग-पुस्तक-रावल (Shikshan Men Mere Prayoga Book Rawal)
(b) प्रत्यक्ष प्रशिक्षण – रावल (Parctical Training - Rawal)

अध्यापक एव छात्रों हेतु प्रत्यक्ष प्रशिक्षण कार्यक्रम युक्त परियोजनाए

(Projects with practical Training Programmes for Teachers & Taughts)

11 अर्द्धावकाश परियोजना (Recess Project)
(अर्द्धवकाश का विभिन्न गतिविधियो के साथ सामूहिक रूप से आनन्द लेना सह नाववतु, सह नौ भुनक्तु, सहवीर्यं करवावहै – का प्रत्यक्ष स्वरूप) (To enjoy the recess hours with different activities collectively to live together To eat together To work together A Practical touch)

12 निबन्ध लेखन प्रशिक्षण परियोजना (Essay writing Training Programme)

13 गृह-कार्य-मुक्ति आधारित शिक्षण परियोजना (No Home-work policy based Teaching Project)

14 हिन्दी-अग्रेजी वर्तनी सुधार परियोजना (अध्यापक एव छात्रों हेतु) (Hindi and English Pronunciation project for Teachers and Taughts)

15 पाक्षिक आधारभूत पाठ्यक्रम प्रशिक्षण परियोजना (अध्यापक एव छात्रों हेतु) (Two weeks Fundamentals Training Course project for Teachers & Taughts)

16 SUPW शिविर परियोजना (मूल अवधारणा का प्रत्यक्ष प्रयोग) (SUPW Camp Project (Practical Touch to the basic concept of SUPW camps))

17 हिन्दी माध्यम विद्यालयों में अग्रेजी वार्तालाप परियोजना (अध्यापकों एव छात्रों हेतु) (Spoken English Project in Hindi Medium Schools (For Teachers & Taughts))

18 मानस-निर्माण परियोजना (अध्यापकों एव छात्रों हेतु) (Mind-Making Project (For Teachers & Taughts))
(a) शिक्षक आचार सहिता-आलेख-रावल (Teachers code of conduct Article Rawal)
(b) बच्चे छोटे बात बड़ी-पुस्तक-रावल (Bachche Chhote Baat Badi Book Rawal)

तुमने कल इसका टिफिन चुपके से खाया
मैं यह नहीं पूछ रहा हूँ कि गलती क्यों
पूछ रहा हूँ कि गलती कहाँ थी ? छात्र (
का सहज स्वर में उत्तर था– 'मैं अपने
रोक नहीं सका। .. 'क्या तुम सबने गुरु
लगर की तन्दूरी रोटी चखी ? समवेत
जवाब मिला– 'चखी नहीं खाई पेट
खाई। इतने में 'सर! इन तीनों ने तो
तोड़ दिया। बहुत हास्यपूर्ण उलाहना के
एक छात्रा बोली। मेरे मुँह से केवल २.
निकला– अरेऽऽ' नानक जयन्ती के ,
उन तीन छात्राओं (कक्षा 10) में से एक का
था– 'तो क्या हो गया ? जीवन को सहज
जीने में भी तो कोई आनन्द मिलता है। ...
हुआ रे ? क्यों रोता है ? योगीजी ने
क्या ? एक ही स्वर में कक्षाध्यापक श्री रा
यादव ने तीन प्रश्न उस छात्र से पूछ लि
अजीबोगरीब कसमसाहट के साथ रुआसी
में छात्र (कक्षा 11) बोला– 'मार लेते तो
था।

इस प्रकार के प्रत्युत्तर अनेक
समय बहुत ही अनूकूल सटीक और
किन्तु आशा से भी अधिक सुन्दर मिले। .
क्षणों में मुझे अलौकिक आनन्द व सुख
हुआ और इतना रस मिला कि ...
खुमारी में जीवन की अन्य उपलब्धियाँ
पर एक टीस अन्दर ही अन्दर कचोटती रही